आमुख

उद्यच्चण्डकराभभव्यभुवनाभ्यर्चाप्रदीप्तं वपु-
र्बिभ्रन्मञ्जुलमौञ्जसूत्रमनघं घर्मघ्नकान्तस्मितम्।
सीतारामपदारविन्दमधुपः प्रावृट्पयोदद्विषां
झञ्झावातनिभो भवाय भवतां भूयान्मुहुर्मारुतिः॥

साहित्यगगन के मरीचिमाली एवं कविता कामिनी यामिनी के शारद निष्कलङ्क शशाङ्क, रामभक्ति भागीरथी सनाथित हृदय धरातल, सकल कविकुल शेखर, वैष्णववृन्द वृन्दारकेश, सीतारमण पद पद्म पराग परिमल मकरन्द मधुकर, कलिपावनावतार, प्रातःस्मरणीय, परम आदरणीय, श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजकी कृतियों में श्रीहनुमानचालीसा को भी बहुचर्चित रूप में स्थान प्राप्त है। गुणग्राह्या विपश्चितः की दृष्टि से इस विषय पर विशेष आलोचनीय नहीं है तथापि कुछ विचार करना अनुपयुक्त भी नहीं होगा। गोस्वामीजी के ही द्वारा श्रीकाशी में प्रतिष्ठित श्रीसङ्कटमोचनहनुमानजी के मन्दिर में भी यह हनुमानचालीसा स्तोत्ररत्न भित्ति पर लिखा हुआ लेख-रूप में आज भी दृष्टिगोचर है। मानस जी के तथा गोस्वामी जी के अन्य सर्वमान्य ग्रन्थ रत्नों की प्रसङ्ग-सङ्गति भी इस ग्रन्थ के प्रसङ्गों से एकवाक्यतापन्न हो जाती है। यथा- लाय सँजीवनि लखन जियाये (ह.चा. ११), तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा (ह.चा. १६), तुम्हरो मन्त्र बिभीषन माना (ह.चा. १७) इत्यादि प्रसङ्ग मानस से पूर्णतया मिलते हैं। श्रीहनुमान-विभीषण संवाद श्रीमानसजी के अतिरिक्त गोस्वामीजी के अन्य किसी ग्रन्थ में शब्दतः नहीं चर्चित हैं। पर मानसके इस गोपनीयतम प्रसङ्गरत्न की चर्चा श्रीहनुमान चालीसा में तुम्हरो मन्त्र बिभीषन माना (ह.चा. १७) कह कर सूत्ररूप में कर दी गई है। श्रीरामचरितमानस में कथित प्रसङ्गों की गोस्वामी जी के अन्य ग्रन्थों से सङ्गति लगाई जाती है। इसीलिए द्वादश ग्रन्थ मानसजी के पूरक माने जाते हैं। जैसे द्रोणाचलको लेकर श्रीअवध के ऊपर आते हुए हनुमान जी को भरतजी ने बिना फरके बाण से विद्धकर नीचे गिराया यथा परेउ मुरछि महि लागत सायक (रा.च.मा. ६-५९-१)। पर पर्वतकी क्या दशा हुई इसका स्पष्टीकरण मानस में न करके गोस्वामी जी ने इसके पोषक गीतावली ग्रन्थ में किया है – पर्यो कहि राम पवन राख्यो गिरि (गी. ६-१०-२) अर्थात् हनुमानजी ने अपने को गिरता हुआ जानकर द्रोणाचल पर्वत को पवन के हाथ सौंप दिया एवं अन्यत्रापि। जैसे गोस्वामी जी के अन्य ग्रन्थ मानस के प्रसङ्गों के पूरक हैं वैसे ही श्रीहनुमानचालीसा भी है। यथा राघव ने हनुमान जी को मुद्रिका दी –

परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्ह जन जानी॥

– रा.च.मा. ४-२३-१०

पर इस मुद्रिका को हनुमानजी महाराज ने कैसे एवं कहाँ सम्भाला मानस के इस निगूढ़ प्रसंग का स्पष्टीकरण श्रीहनुमान-चालीसा में ही होता है। यथा –

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं॥

– ह.चा. १९

अतः इस परीक्षण में भी यह ग्रन्थ खरा उतरा। भाषा एवं शैली की दृष्टि से भी यह निन्द्य नहीं कहा जा सकता। सामान्य लोगों के कल्याणार्थ गोस्वामी जी ने सुरसरि सम सब कर हित होई (रा.च.मा. १-१४-९) की मान्यता के अनुसार अति सरल ग्राम्य भाषा में रचना करके मधुरतम शिष्ट एवं सुबोध ग्रामीण शब्दों में इसे सजाया है। यही कारण है कि यह विद्वानों की भी हृदयतन्त्री को झङ्कृत करता है एवं अति गँवार निरक्षर महिलाओं के भी हृदय-श्रद्धा-सुमन का परम पावन मकरन्द होकर ग्रामीण भारती मधुकरी को भी गुनगुनवाता रहता है। आज यह हनुमानचालीसा हिमाचल से कन्याकुमारी तक प्रत्येक भारतवासी के मन-मन्दिर का देवता बना हुआ है चाहे वह व्यक्ति किसी धर्म या सम्प्रदाय का हो। विदेशों के भी ७५ प्रतिशत विभागों में जय हनुमान ज्ञान गुण सागर (ह.चा. १) का नारा बुलन्द हो रहा है। गोस्वामीजी के अतिरिक्त और किसी मनीषी की लेखनी में ऐसी उत्कृष्ट लोकप्रियता का प्रवाह नहीं दृष्टिगोचर होता।

अन्य ग्रन्थों जैसी लोकप्रियता तुलसीकृत हनुमानचालीसा में विद्यमान है। प्रत्येक सनातनधर्मी श्रीमानसजी के पाठ प्रारम्भ तथा पाठ विश्राम में हनुमानचालीसा का सम्पुट लगाता है।

यदि भाषा पर विचार करें तो गोस्वामी जी के श्रीरामललानहछू से सरल हनुमानचालीसा की भाषा नहीं है। गोस्वामीजी के अन्य ग्रन्थों के समान इसमें भी स्वभावतः अलंकार आये हैं। यथा –

कंचन बरन बिराज सुबेषा। कानन कुंडल कुंचित केशा॥

– ह.चा. ४

अतः भले ही यह हनुमानचालीसा तुलसीग्रन्थावली में न मुद्रित हो, पर गोस्वामी जी की रचना होने में किसी भी सहृदय को सन्देह नहीं होगा। इसका श्रद्धा से पाठ करने पर बहुत से लोगों का सफलमनोरथ होते देखा एवं सुना गया है। प्रायः भक्त महात्माजन हनुमानचालीसा का ४९ (उनचास) दिवसीय तथा अष्टोत्तरशत (१०८) दिवसीय अनुष्ठान किया करते हैं। भीषण रोग से आक्रान्त व्यक्ति भी इसका अनुष्ठान-विधि से पाठकर अति शीघ्र लाभ पाते हैं। परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन अनन्तश्रीविभूषित स्वामी हरिहरानन्द जी सरस्वती (श्रीकरपात्रीजी महाराज) तो यहाँ तक कहते थे कि श्रीहनुमानचालीसा आर्ष मन्त्रों की भाँति ही परम-प्रमाण, सर्वशक्तिमान तथा सर्ववाञ्छाकल्पतरु है। यह अवधी भाषा में उपनिबद्ध तैतालीस छन्दों में लिखा हुआ एक स्तोत्र काव्य है जिसे हम गोस्वामी जी की सिद्ध रचना मानते हैं। श्रीहनुमानचालीसा की भाषा शैली गोस्वामीजी के अन्य ग्रन्थों से मिलती-जुलती है। श्रीहनुमानचालीसा की सार्वभौमता एवं सर्वजन सुलभता को देखते हुए कोई भी सहृदय सन्त इसे अनार्ष नहीं मान सकता। गोस्वामीजी की द्वादश ग्रन्थावली के अन्तर्गत इस ग्रन्थ का संग्रह न होना कोई विशेष महत्त्व का नही है क्योंकि बहुत से ऐसे पद श्रीगोस्वामी जी के नाम से मिलते हैं जिनका संग्रह ग्रन्थावली में नहीं है जबकि उनकी रचना शैली क्वचित्- क्वचित् गोस्वामीजी के संगृहीत पदों से भी अधिक रुचिकर लगती है। यथा –

ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ॥
किलकि किलकि उठत धाय परत भूमि लटपटाय।
धाय मातु गोद लेत दशरथ की रनियाँ॥
अंचल रज झारि झारि विविध भाँति सौं दुलारि।
तन मन धन वारि वारि कहत मृदु वचनियाँ॥
विद्रुम से अरुण अधर बोलत मुख मधुर मधुर।
सुभग नाशिका में चारु लटकत लटकनियाँ॥
तुलसिदास अति अनंद देख के मुखारबिन्द।
रघुबर छबि के समान रघुबर छबि बनियाँ॥

अहो। इस पद में उपस्थित की हुई राघवसरकार की यह भुवनमोहन झाँकी किस सहृदय मनको बालरूप श्रीरामभद्रकी ओर झटिति नहीं खींच लेती। यह पद अलंकार, रस-भक्ति तथा संगीत की दृष्टि से अनुपम होता हुआ भी गोस्वामीजी के किसी भी ग्रन्थ में संगृहीत नहीं हो सका, पर ४०० वर्ष से चली आ रही अविच्छिन्न परम्परा में अद्यावधि यह गोस्वामीजी की गेय रचनाओं का चूड़ामणि माना जाता है। ठीक यही तथ्य श्रीहनुमानचालीसा के विषय में भी जानना चाहिए। श्रीहनुमानचालीसा के श्रीतुलसीदासजी की रचना-पक्ष में एक और सशक्त प्रमाण उद्धृत किया जा रहा है। प्रायः गोस्वामीजी के अन्य ग्रन्थों में उनके द्वारा रचित एक में दूसरे ग्रन्थ के कतिपय पद्य उद्धृत देखे जाते हैं। यथा दोहावली का प्रथम दोहा (राम बाम दिसि जानकी, दो. १) रामाज्ञा प्रश्न (रा.प्र. ७-३-७) तथा वैराग्य संदीपनी (वै.स. १) में ज्यो-का-त्यों उद्धृत है। इसी प्रकार श्रीमानस-जी के १०० से अधिक दोहे यथानुपूर्वी श्रीदोहावली में संगृहीत है। उदाहरण के लिए दो-एक देखे जायें –

एक छत्र एक मुकुटमनि सब बरनन पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥

– रा.च.मा. १-२०

यही दोहा दोहावली ग्रन्थ का ९वाँ है। बालकाण्ड का २७वाँ (राम नाम नरकेसरी) दोहावली का २६वाँ। ठीक इसी पद्धति का अनुसरण श्रीहनुमानचालीसा के प्रारम्भ में किया गया। अयोध्याकाण्ड के प्रथम दोहे का श्रीहनुमानचालीसा के मङ्गलाचरण में प्रस्तुतीकरण ही हनुमानचालीसा को निःसंदिग्ध कर देता है। अयोध्याकाण्ड का प्रथम दोहा श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि इत्यादि दोहा ज्यों-का-त्यों हनुमान-चालीसा के मङ्गलाचरण के रूप में सनातन धर्मावलम्बी आबालवृद्ध जन-जन के मुखमण्डल पर विराजमान है। अतः –

एतेहु पर करिहैं जे शंका। मोते अधिक ते जड़मति रंका॥

– रा.च.मा. १-१२-८

इत्यलमतिपल्लवितेन। श्रीहनुमानबाहुक की भाँति यह छोटे-छोटे मात्र ४३ छन्दों में उपनिबद्ध है। यह परम स्वस्त्ययन स्तोत्ररत्न समस्त ऐहिलोकिक एवं पारलौकिक कामनाओं की पूर्ति करता है। मैंने भी इसके विधिवत् प्रयोग का सद्यः फल देखा है। गोस्वामीजी के ग्रन्थावली में संगृहीत न होने के कारण आज तक पाश्चात्य वासना वासित मनस्क साहित्यिक टीकाकार महानुभावों द्वारा उपेक्षया इसकी कोई टीका न लिखी जा सकी। कुछ वर्षों पूर्व श्रीइन्दुभूषण रामायणी द्वारा इस पर एक संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत की गई। उसमें भी विषय का यथेष्ट व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण नहीं हो पाया। अतएव गतवर्ष चौद्वार (उड़ीसा) में समायोजित श्रीसंकटमोचन हनुमानजी के प्रतिष्ठा महोत्सव के शुभ-अवसर पर अपने सद्गुरुदेव अनन्त श्रीविभूषित श्री श्री १०८ श्रीरामचरणदासजी महाराज (फलाहारी बाबा सरकार, अरैल, प्रयाग) के आदेशानुसार मैंने श्रीहनुमान-चालीसा पर लघु-व्याख्या प्रस्तुत करने का बाल-सुलभ प्रयास किया है। यह कितने अंशों में सफल हो पाया है इसका आकलन संत महानुभाव ही कर सकते हैं। क्योंकि हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः शामिकापि वा (र.वं. १-१०)। शास्त्र-स्वाध्याय में असमर्थता तथा मानव स्वभावजन्य प्रमादवशात् यदि कुत्रचित् त्रुटि हो गयी हो तो भगवद्भक्तजन उसे क्षमा करेंगे। श्रीहनुमान-चालीसा में कुल ४३ पद है जो दोहा तथा चौपाई छन्द में निबद्ध हैं। इसके प्रारम्भ में २ दोहे तथा उपसंहार में १ दोहा है शेष ४० चौपाइयाँ हैं। पुराणों के मन्त्रात्मक भाग में कथित अर्धश्लोकों की भाँति यहाँ प्रत्येक पङ्क्ति को पूर्ण छन्द स्वीकार कर ही उनकी ४० संख्या के आधार पर ग्रन्थ का नाम श्रीहनुमानचालीसा रखा गया। इसी प्रकार श्रीमानसजी में भी जहाँ- जहाँ विषम संख्या पर पङ्क्ति आई है उस प्रत्येक पङ्क्ति को प्रत्येक टीकाकारने स्वतन्त्र चौपाई के रूप में मानकर उसकी टीका की है। उदाहरणार्थ –

(१) बालकाण्ड १-२-१३ (अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥)

(२) अयोध्याकाण्ड २-८-७ (गावहिं मंगल कोकिलबयनी। बिधुबदनी मृगशावकनयनी॥)

(३) अरण्यकाण्ड ३-१२-१३ (जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुखकंदा॥)

(४) किष्किन्धाकाण्ड ४-१०-५ (मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥)

(५) सुन्दरकाण्ड ५-१-९ (जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। कह मैनाक होहु श्रमहारी॥)

(६) युद्धकाण्ड ६-८०-११ (सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके॥)

(७) उत्तरकाण्ड ७-६४-९ (प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब शिशु चरित कहेसि मन लाई॥)

यह दिग्दर्शन मात्र प्रस्तुत किया गया। दुर्गासप्तशती में तो ऋषिरुवाच तथा नमस्तस्यै को भी एक-एक श्लोक माना गया है। गोस्वामी जी ने इसी पौराणिक पद्धति का अनुसरण किया है। यह लगभग एक वर्ष पहले पूर्व देश में ही उपनिबद्ध की गयी थी। मुझे लगता है कि इसी हनुमानचालीसा व्याख्या के फल ने दासको रामभद्रदास कहलाने का सौभाग्य दे दिया। इस व्याख्या के मुद्रण तथा प्रकाशन का भार

सहर्ष स्वीकारा है ७ए/५१, डब्ल्यू ई ए, करोल बाग, नयी दिल्ली-५ कृष्णदास चैरिटेबल ट्रस्ट के ट्रस्टी मेरे सुयोग्य शिष्य श्रीझाबरमल चोखानी ने। एतदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। मुझे आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थ के अनुशीलन से आस्तिक सनातन धर्मी हनुमत्परायण तथा श्रीमानस के कथावाचक महानुभाव परम सन्तोष का अनुभव करेंगे। मैं समस्त वैष्णव सन्तों के ही कर-कमलों में इस ग्रन्थोपहार को समर्पित कर उनके पाद-पद्मों-में साष्टाङ्ग प्रणत हो रहा हूँ।

श्रीवैष्णवेभ्यो नमो नमः
इति निवेदयति राघवीयः
रामभद्रदास:
फलाहारी आश्रम, अरैल, प्रयाग
इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश)

Mangalacharan:
॥ श्रीहनुमते नमः ॥
॥ श्रीहनुमानचालीसा ॥
(महावीरी व्याख्या सहित)

॥ मङ्गलाचरण ॥
तापिच्छनीलं धृतदिव्यशीलं ब्रह्माद्वयं व्यापकमव्ययञ्च।
राजाधिराजं विशदं विराजं सीताभिरामं प्रणमामि रामम्॥ १ ॥
सीतावियोगानलवारिवाहः श्रीरामपादाब्जमिलिन्दवर्यः।
दिव्याञ्जनाशुक्तिललामभूतः स मारुतिर्मङ्गलमातनोतु॥ २ ॥
गुरून्नत्वा सीतापतिचरणपाथोजयुगलं
चिरञ्चित्ते ध्यात्वा पवनतनयं भक्तसुखदम्।
गिरं स्वीयां दुष्टां विमलयितुमेवार्यचरितै-
र्महावीरीव्याख्यां विरचयति बालो गिरिधरः॥ ३ ॥
श्रीगुरुदेव गजानन मारुति आरति नाशिनि गौरि गिरीशा।
जानकि जीवन मारुतनन्दन पंकज पायन नाइके शीशा।
माधव शुक्ल शुभा परिवा तिथि भार्गववार प्रभातगवीशा।
संवत बीस शताधिक चालिस व्याख्या करी हनुमानचालीसा॥ ४ ॥

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥

– रा.च.मा. सु.कां. मं.श्लो. ३

॥ श्रीराम ॥

मूल (दोहा) –

श्री गुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जस जो दायक फल चारि॥

शब्दार्थ – मुकुर - दर्पण।

अर्थ – श्रीगुरुदेवजी के श्रीचरणकमल की परागरूप धूलि से अपने मन-रूप-दर्पण को स्वच्छ करके रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीरामभद्रजू के निर्मल यश का वर्णन कर रहा हूँ, जो चारों फलों को देने वाला है।

व्याख्या – सनातन धर्म के अलंकारभूत परम पावन स्तोत्र रत्न श्रीहनुमानचालीसा की रचना का प्रारम्भ करते हुए कलिपावनावतार निखिलवैष्णवकुलशेखर सारस्वतसार्वभौम परमरामभक्त प्रातःस्मरणीय कविकुलतिलक पूज्य श्रीगोस्वामी तुलसीदास महाराज प्रतिज्ञा वाक्य में सर्वप्रथम श्रीपद के प्रयोग से श्रीजी का स्मरण कर रहे हैं जो समस्त मङ्गलों की खान हैं –

बाम भाग शोभति अनुकूला। आदिशक्ति छबिनिधि जगमूला॥

– रा.च.मा. १-१४८-२

यही श्रीजनक महाराज के यशोवर्धन हेतु श्रीमिथिला भूमि में प्रकट होती हैं तथा श्रीसीता रूपसे श्रीरामभद्रजू के वाम भाग में विराजमान होकर जीव के भगवत्प्रातिकूल्य को निरस्त करती हैं। श्रीशब्द का गुरु शब्द से दो प्रकार का समास है –

(१) मध्यमपदलोपितृतीयातत्पुरुषसमास श्रिया अनुगृहीतो गुरुः इति श्रीगुरुः। अर्थात् श्रीजी के द्वारा अनुगृहीत गुरुदेव। अभिप्राय यह है कि श्रीसम्प्रदाय में दीक्षित गुरुदेव की ही चरण-धूलि से मन की निर्मलता सम्भव है। क्योंकि श्रीजी की कृपा के बिना अविद्याकृत दोष नष्ट नहीं होते। तात्पर्य यह है कि श्रीजी को गोस्वामीजी ने भगवदभिन्न होने पर भी भक्तिरूप में स्वीकारा है। यथा –

लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचन्द।
ग्यान सभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानन्द॥

– रा.च.मा. २-२३९

(२) कर्मधारय श्रीरेव गुरुः इति श्रीगुरुः। अर्थात् श्री ही गुरु हैं। श्रीसम्प्रदाय में श्रीरामानुजाचार्य तथा श्रीरामानन्दाचार्यजी ने श्रीजी को ही परमगुरु माना है। अन्य आर्ष ग्रन्थों में श्रीसीता भगवती को श्रीहनुमानजी की आचार्या के रूप में स्वीकारा गया है। यथा समस्तनिगमाचार्यं सीताशिष्यं गुरोर्गुरुम्। अर्थात् श्रीहनुमान जी श्रीसीताजी के शिष्य तथा देवगुरु बृहस्पतिजी के भी गुरु हैं। अतः श्री हनुमानजी की सन्तुष्टि के लिए प्रणीत श्रीहनुमानचालीसा के प्रारम्भ में उनकी आचार्या श्रीसीताजी का स्मरण अत्यन्त उपयोगी है, यही श्री गुरु शब्द का अभिप्राय प्रतीत होता है। रज शब्द यहाँ श्लेषके बल से कमल पक्ष में पराग एवं चरण पक्ष में धूलि रूप अर्थ का द्योतक है। मनको मुकुर कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे दर्पण में बिम्बका प्रतिबिम्बन होता है उसी प्रकार मन में श्रीभुवनमनोहर श्रीराघव के रूप का प्रतिबिम्बन होता है, पर वह विषय रूप काई (जलका मल) से मलिन हो चुका है। यथा काई बिषय मुकुर मन लागी (रा.च.मा. १-११५-१)। अतः उसे श्रीगुरुदेव के चरण-कमल की पराग जैसी मृदु धूलि से स्वच्छ करके पुनः श्रीराम जी के यश-वर्णन की प्रतिज्ञा करते हैं जिससे स्वच्छ मन दर्पण में भली-भाँति उस यशश्चन्द्र का प्रतिबिम्बन हो सके।

श्रीहनुमानचालीसा के प्रारम्भ में रघुवर बिमल जस बरनउँ यह वाक्यखण्ड एक जिज्ञासा का केन्द्र बन जाता है, तथा कुछ सामान्य मस्तिष्क वालों को असंगत प्रतीत होता है। पर विचार करने पर इसका सुगमतया समाधान हो जाता है। श्रीहनुमानजी महाराज श्रीरामभद्रजू के सर्वतोभावेन समर्पित भक्तों में अग्रणी हैं। श्रीरघुनाथ जी के अतिरिक्त वे अपना किञ्चित् भी अस्तित्व मानने को तैयार नहीं है। यथा –

ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥

– रा.च.मा. ४-३-३

अतः श्रीरघुवर-यश-वर्णन में ही उनके यश का वर्णन गतार्थ हो जाता है। दूसरी बात यह भी है कि वैष्णव भक्तों को अपनी प्रशंसा नहीं भाती। अतः रघुवर-यश-वर्णन से ही श्रीहनुमान जी की प्रसन्नता सम्भव है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर श्रीगोस्वामी जी ने अभिधावृत्ति से श्रीरामजी के यश का वर्णन कर श्रीहनुमान-चालीसा से श्रीमारुति को प्रसन्न किया तथा रघुवर-यश-भङ्गिमा से लक्षणावृत्ति द्वारा श्रीहनुमत्-यशोगान कर इस हनुमानचालीसा स्तोत्र को श्रीराघव की प्रसन्नता का केन्द्र बना दिया। अतः रघुवर जस बरनउँ से उपक्रम करके राम लखन सीता सहित हृदय बसहु सुर भूप से उपसंहार करेंगे। यह रामयश अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष - इन चारों फलों का प्रदाता है। भाव यह है कि इससे प्रसन्न होकर हनुमानजी महाराज श्रीहनुमानचालीसा के पाठक को पुरुषार्थ चतुष्टय दे डालते हैं यद्वा सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य इन चारों मुक्तिफलों को देते हैं अथवा धर्म, ज्ञान, योग, जप इन चारों फलों को देते हैं। किंवा ज्ञानवादियों को साधन चतुष्टय से सम्पन्न कर देते हैं।

॥ श्रीराम ॥

मूल (दोहा) –

बुद्धिहीन तनु जानिकै सुमिरौं पवनकुमार।
बल बुधि बिद्या देहु मोहिं हरहु कलेश बिकार॥

शब्दार्थ – बिकार - दोष।

अर्थ – अपने शरीर को बुद्धि से हीन जानकर मैं श्रीपवनपुत्र हनुमान जी का स्मरण कर रहा हूँ। हे प्रभो। आप मुझे बल, बुद्धि तथा विद्या प्रदान करें तथा क्लेश एवं विकारों को समाप्त कर दें।

व्याख्या – बुद्धि शब्द भगवत्सेवोपयोगिनी बुद्धि का वाचक है तथा तनु सूक्ष्म शरीर का। क्योंकि बुद्धि को सूक्ष्म शरीर का अवयव माना गया है। अर्थात् मेरी बुद्धि तमोगुण के आधिक्य से भगवान् के श्रीचरण-कमलों से विमुख हो गई है, अतः पवनपुत्र का स्मरण करता हूँ। पवन शब्द का अर्थ है पवित्र करने वाला। यथा पुनाति इति पवनः। आप उनके पुत्र अर्थात् अग्नि हैं तथा वायोरग्निः (तै.उ. २-१-१) इसलिए अग्निवत् बुद्धि में परम प्रकाश का आधान करके क्लेश आदि मलों को ध्वस्त कर दें। अब हनुमान जी से तीन वस्तुओं की याचना करते हैं –

(१) बल – यहाँ कामरागविवर्जित आत्मबल परक है यथा बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् (भ.गी. ७-११)। यही आत्मबल भगवत्प्राप्ति में साधन है यथा नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः (मु.उ. ३-२-४)।

(२) बुद्धि – यहाँ ईश्वर प्रपन्न बुद्धि अभिप्रेत है। यथा चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि (रा.च.मा. ३-४)।

(३) विद्या – यहाँ विद्या विनयसम्पन्ना अपेक्षित है। जो भगवत्सम्बन्ध का विवेक उत्पन्न करके जीव को राघव के चरण कमल से जोड़ दे यथा सा विद्या या विमुक्तये (वि.पु. १-१९-४१)।

बिद्या बिनु बिबेक उपजाए। श्रम फल किए पढ़े अरु पाए॥

– रा.च.मा. ३-२१-९

अर्थात् श्रीआञ्जनेय बल, बुद्धि एवं अध्यात्म विद्या से भगवान् के सौन्दर्य, ऐश्वर्य एवं माधुर्य की अनुभूति का सामर्थ्य दें।

क्लेश पाँच होते हैं - अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश (मरण)। अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः (यो.सू. २-३)। विकार छः कहे जाते हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य। यथा षट विकार जित अनघ अकामा (रा.च.मा. ३-४७-७)। इस

प्रकार पञ्च क्लेश षट् विकारों का योग ग्यारह (११) हुआ और आप एकादशरुद्रमय हैं। यथा रुद्र अवतार संसार पाता (वि.प. २५-३)। अतः मेरे इन एकादश शत्रुओं को समाप्त करें।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

जय हनुमान ज्ञान गुण सागर। जय कपीश तिहुँ लोक उजागर॥ १ ॥

शब्दार्थ – उजागर (उज्जागर) - प्रसिद्ध।

अर्थ – समस्त शास्त्रीय ज्ञान एवं गुणों के समुद्र श्रीहनुमान जी आपकी जय हो। हे तीनों लोकों में प्रसिद्ध वानरों में श्रेष्ठ आञ्जनेय आपकी जय हो।

व्याख्या – इस चौपाई के पूर्वार्ध में श्रीहनुमान जी के पारलौकिक उत्कर्ष तथा उत्तरार्ध में लौकिक आदर्श का वर्णन करते हैं। श्रीहनुमान जी समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हैं। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धा काण्ड में भगवान् श्रीराम इनके अलौकिक ज्ञान की प्रशंसा करते हैं –

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन विधिना श्रुतम्।
बहुव्याहरताऽनेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥

– वा.रा. ४-३-२८,२९

श्रीरामचन्द्र जी प्रशंसा के स्वर में कहते हैं कि जिसने ऋग्वेद की पूर्ण शिक्षा नहीं पाई तथा जिसने यजुर्वेद को अर्थतः धारण नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान् नहीं, वह इस प्रकार का भाषण कभी भी नहीं कर सकता। निश्चित ही सम्पूर्ण व्याकरण इसने विधिवत् सुना है क्योंकि धाराप्रवाह से बोलता हुआ यह विद्यार्थी कहीं भी एक भी अक्षर अशुद्ध नहीं बोला।

हनुमान जी रुद्रावतार होने से तथा जल, थल एवं नभ में अव्याहत गति होने के कारण तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। जय कपीश - हनुमानजी कपियों के ईश्वर हैं। यथा वानराणामधीशं (रा.च.मा. सु.कां. मं.श्लो. ३)। श्रीरामजी की सेवा के लिए वानर-शरीर धारण किया क्योंकि उनके स्वामी नर-वेश में अवतार लिए तुमहिं लागि धरिहउँ नरबेशा (रा.च.मा. १-१८७-१)। स्वामी से सेवक को निम्न कक्षा में होना चाहिए। यथा –

जेहि शरीर रति राम सों सोइ आदरहि सुजान।
रुद्र देह तजि नेह बश बानर भे हनुमान॥

– दो. १४२

यद्यपि और देवों को ब्रह्मा जी ने वानर रूप में अवतार लेने का आदेश दिया था। यथा –

निज लोकहि बिरंचि गे देवन इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरनि महँ हरि पद सेवहु जाइ॥

– रा.च.मा. १-१८७

पर महादेवको आदेश नहीं दिया था, अतः देवन इहइ सिखाइ कहा न तु महादेवहि। वानर शरीर धारण करने में दूसरा हेतु यह भी है कि वानर शुद्ध शाकाहारी होता है। अर्थात् वन्य फल, मूल, पत्तों से ही अपनी जीविका चलाता है जो श्रीराघव को बहुत प्रिय है। यथा –

(१) फलमूलाशिनौ दान्तौ (रा.र.स्तो. १८)

(२) शाकप्रियः पार्थिवः

(३) न मांसं राघवो भुङ्क्ते (वा.रा. ५-३६-४१) अर्थात् राघव मांस कभी नहीं खाते हैं। अतः प्रभु की वृत्ति के अनुसार श्रीहनुमान जी ने विशुद्ध शाकाहारी वानर शरीर धारण किया। अतः हनुमान जी के उपासक भावुक भक्तों को कभी भी मांस-मत्स्य तथा मद्यका सेवन नहीं करना चाहिए। मांसाहारी उपासक निश्चित ही हनुमान जी के कोप का भाजन बनता है।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

रामदूत अतुलित बल धामा। अंजनिपुत्र पवनसुत नामा॥ २ ॥

शब्दार्थ – अतुलित बल धामा - अतुलनीय बल के आश्रय।

अर्थ – आप श्रीराम जी के विश्वस्त दूत तथा अतुलनीय बल के आश्रय हैं तथा आप अञ्जनीपुत्र एवं पवनपुत्र नाम से प्रसिद्ध हैं।

व्याख्या – श्रीहनुमान जी श्रीराघव के अन्तरङ्गतम दूत हैं। अतः श्रीसीताजी के प्रति गोपनीय संदेशवाहक का कार्य इन्हीं को सौंपा गया। यथा –

बहु प्रकार सीतहिं समुझाएहु। कहि बल बीर बेगि तुम आएहु॥

– रा.च.मा. ४-२३-११

सुन्दरकाण्ड में श्रीसीताजी के समक्ष स्वयं कहते हैं रामदूत मैं मातु जानकी (रा.च.मा. ५-१३-९) और प्रामाणिकता के लिए करुणानिधान की शपथ करते हैं सत्य शपथ करुणानिधान की (रा.च.मा. ५-१३-९)। भाव यह है कि मुझमें दूत बननेकी कोई पात्रता न होने पर भी करुणानिधान की करुणा ने यह महत्त्वपूर्ण पद दे दिया।

हनुमान जी अतुलनीय बल के आश्रय हैं ही। यथा तेरे बल बानर जिताये रन रावन सों (ह.बा. ३३)। अथवा अतुलित बलशाली भगवान् श्रीराम हैं, यथा अतुलित बल अतुलित प्रभुताई (रा.च.मा. ३-२-१२)। उनके भी आश्रय हैं श्रीहनुमान। यथा चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा (रा.च.मा. ५-१-४)।

अंजनि पुत्र पवन सुत नामा ये दोनों सम्बोधन हनुमान जी की मातृमत्ता एवं पितृमत्ता को सूचित करते हैं। अञ्जना जो पहले पुञ्जिकस्थला नाम की अप्सरा थीं इन्हें अगस्त्यजी के शाप से वानर शरीर प्राप्त हुआ। कामरूप धारण का सामर्थ्य होने से कदाचित् अञ्जना को दिव्य रूप सम्पन्न देखकर वायुदेव ने उनका मानसिक स्पर्श कर हनुमान जी जैसे महापराक्रमी महापुरुष को उनके गर्भमन्दिर में प्रतिष्ठित किया। रूपरहित होने से केशरी पत्नी का न तो सतीत्व भङ्ग हुआ और न ही साङ्कर्य दोष आया। क्योंकि वायु सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःस्थ हैं तथा प्रत्येक वस्तु के त्याग एवं स्वीकार में वही कारण हैं। वायु के बिना कभी भी न तो गर्भाधान सम्भव

है और न तो बालक का जन्म – प्रसव पवन प्रेरेउ अपराधी (वि.प. १३६)। यहाँ यह भी ध्यान रहे कि रूपवान् का स्पर्श ही पदार्थ में विकृति लाता है किन्तु वायु रूपरहित स्पर्श वाला है यथा रूपरहितस्पर्शवान् वायुः (त.सं. १३)। वायु सामान्यतः प्रत्येक प्राणी के प्रत्येक अङ्ग का स्पर्श करता है, अतः वायवीय स्पर्श में दोष नहीं। वायु सबसे पवित्र है यथा पवनः पवतामस्मि (भ.गी. १०-३१) अतः परम पवित्र पिता से जन्म होने के कारण हनुमान जी परम पवित्रतम व्यक्तित्व सम्पन्न हुए।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

महाबीर बिक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी॥ ३ ॥

शब्दार्थ – बिक्रम - विशिष्ट क्रम सम्पन्न या विशेष प्रकार की लंघनक्रिया सम्पन्न (क्रमु पादविक्षेपे धा.पा. ४७३)।

अर्थ – आप महावीर तथा विशेष साधना क्रम से सम्पन्न किंवा विशिष्ट समुद्र के लाँघने की क्रिया से युक्त हैं। आप का शरीर वज्रमय है। आप कुबुद्धि को नष्ट करनेवाले एवं भगवद्भक्ति पूर्ण बुद्धि से युक्त व्यक्ति का साथ देने वाले उचित संगी हैं।

व्याख्या – महावीर केवल बाह्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। पर श्रीमारुति बाह्य एवं आन्तरिक (बाहरी तथा भीतरी) उभय प्रकार के शत्रुओं का दमन करते हैं। इसीलिए इनके विषय में एक सूक्ति है –

ऋते भीष्माद्धि गाङ्गेयादृते वीराद्धनूमतः।
हरिणीखुरमात्रेण चर्मणा मोहितं जगत्॥

– मा.सु.सं. १७४९

अर्थात् को जग काम नचाव न जेही (रा.च.मा. ७-७०-७)। समस्त प्राणी काम-किङ्कर होकर उसके समक्ष नाचते हैं, पर आञ्जनेय जी रघुपतिकिङ्कर होकर उन्हीं के श्रीचरणों में नृत्य करते हैं। यथा जयति सिंहासनासीन सीतारमण निरखि निर्भर हरष नृत्यकारी (वि.प. २७-५)। अतः मानस में भी इन्हें महाबीर कहा गया –

महाबीर बिनवऊँ हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना॥

– रा.च.मा. १-१७-१०

बिक्रम - इनका साधना-क्रम विशिष्ट है। इसलिए यह भगवान् श्रीराम को पीठ तथा हृदयपर आसीन करते हैं। यथा लिए दोऊ जन पीठ चढ़ाई (रा.च.मा. ४-४-५), चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना (रा.च.मा. ५-२३-१२)। यद्वा इनके समुद्र-लङ्घन की क्रिया भी बहुत विशिष्ट है। स्वयं कहते हैं लीलहि लाँघउ जलधि अपारा (रा.च.मा. ४-३०-८)। मैनाक, सुरसा एवं सिंहिका जैसे विघ्नों के प्रस्तुत होने पर भी इनका वेग विहत नहीं हुआ। यथा –

विषण्णा हरयः सर्वे हनूमन् किमुपेक्षसे।
विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन्विक्रमानिव॥

– वा.रा. ४-६६-३७

हे हनुमान सम्पूर्ण वानर बहुत दुखी हैं, उनकी उपेक्षा क्यों करते हो। जिस प्रकार भगवान् विष्णु ने तीन बार चरण का विक्षेप करके समस्त लोकों को नाप लिया था उसी प्रकार एक बार समुद्र लाँघने के लिए अपने चरण का विक्षेप करो। अतः यहाँ बिक्रम का अर्थ है विशेष प्रकार के चरण विक्षेप की प्रक्रिया जिसकी एक छलाँग से भी कम हो गया भूमण्डल से सुदूर नभो मण्डल का परिमाण। यथा बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु लागि फलँगु फलाँगहूँ ते घटि नभतल भो (ह.बा. ५)।

बजरंगी यह शब्द वज्राङ्गी का तद्भव है। जन्म लेने के एक दिन के ही पश्चात् अर्थात् कार्त्तिक कृष्ण अमावस्या को प्रातःकाल क्षुधा से पीड़ित हनुमान जी महाराज ने लाल फलकी भ्रान्ति से सूर्य नारायण के ऊपर आक्रमण कर दिया। उसी समय राहु सूर्य नारायण को ग्रसने हेतु वहाँ उपस्थित था। हनुमान जी ने सूर्य को छोड़कर राहु पर ही आक्रमण कर दिया। अनन्तर राहु से सूचना पाकर वज्रपाणि इन्द्र ऐरावत पर आरूढ़ हो वहाँ उपस्थित हुए। अब श्वेत फलकी भ्रान्ति से ऐरावत पर आक्रमण करते देखकर इन्द्र ने उनकी बायी ठोड़ी पर वज्रका प्रहार करके उन्हें धराशायी कर दिया। पश्चात् क्रुद्ध होकर पवन ने अपने संचार को समाप्त कर प्रत्येक प्राणी के प्राण का अवरोध कर दिया। पश्चात् समस्त देवताओं ने श्रीहनुमानजी को विविध वरदान देकर पवनदेव को प्रसन्न किया। उसी समय इन्द्र ने श्रीहनुमान जी के शरीर को वज्र से अभेद्यता का वरदान देकर उनका हनुमान् नामकरण कर दिया। यह कथा वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड के ३५ तथा ३६वें सर्ग में विस्तार से वर्णित है। यथा उर बिशाल भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन (ह.बा. २)।

हनुमान जी के स्मरण से कुमति का निवारण होता है अथवा कुमतिपूर्ण खलका वे संहार करते हैं तथा सुमतिवान् सज्जनकी सहायता। जैसे कुमति रावण के विनाश में वे मुख्य भूमिका निभाते हैं –

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥

– रा.च.मा. ५-४०-७

उसके विनाश के लिए दशमुख दुसह दरिद्र दरिबे को भयो प्रकट तिलोक ओक तुलसी निधान सो (ह.बा. ८) और सुमति विभीषण को सहायता कर उन्हें अविचल राज्य दिला दिया। यथा जयति भुवनैकभूषण विभीषणवरद (वि.प. २६-६)।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

कंचन बरन बिराज सुबेषा। कानन कुंडल कुंचित केशा॥ ४ ॥

शब्दार्थ – कंचन - स्वर्ण। कुंचित - घुँघराले।

अर्थ – हे कपिश्रेष्ठ आपका वर्ण तप्त स्वर्ण के समान तेजपूर्ण है तथा आप अत्यन्त सुन्दरवेष में विराज रहे हैं। आपके श्रवणों में कुण्डल चमक रहे हैं तथा आपके केश घुँघराले हैं।

व्याख्या – श्रीहनुमान जी ने निष्किञ्चना सेवा के लिए अपने को वानर शरीर में परिणत किया जिसमें सुन्दर वेष, श्रवणों में कुण्डल एवं केशों की सजावट सङ्गत नहीं हो पाती। इन्होंने अपने को सब बिधि हीन चंचल कपि भी कहा। यथा –

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही बिधि हीना॥

– रा.च.मा. ५-७-७

श्रीगोस्वामी जी ने भी साधुमें वेष प्राधान्यका खण्डन करते हुए जाम्बवान् एवं हनुमानजी को ही कुवेशधारी होने पर साधुओं में शिरमौर एवं सम्मानार्ह माना। यथा –

कियउ कुवेश साधु सनमानू। जिमि जग जामवन्त हनुमानू॥

– रा.च.मा. १-७-७

अतः यहाँ ब्राह्मण वेशधारी हनुमानजी की झाँकी का वर्णन सङ्गत लगता है। श्रीमानसजी में भी श्रीराम विभीषण एवं श्रीभरत जी के समक्ष ब्राह्मण वेष में हनुमान जी का आगमन प्रसिद्ध ही है। गौर शरीर की उपमा काञ्चन वर्ण से ही दी जाती है। तथा ब्राह्मण का गौरवर्ण उसकी कुलीनता का द्योतक होता है **गौरो ब्राह्मणः कुलीनः**। बहुवेषधारी आञ्जनेयका कुलीन भद्रवेष एवं केशों का कुञ्चित होना उनके रूपानुरूप ही है।

(१) **बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ** (रा.च.मा. ४-१-६)।

(२) **बिप्र रूप धरि बचन सुनाए** (रा.च.मा. ५-६-५)।

(३) **बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत** (रा.च.मा. ७-१क)।

यही ध्यान अगली चौपाई में भी समझना चाहिए।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

हाथ बज्र अरु ध्वजा बिराजै। काँधे मूँज जनेऊ छाजै॥ ५ ॥

शब्दार्थ – छाजै - शोभित हो रहा है।

अर्थ – हे आञ्जनेय। आपके वज्रवत् सुदृढ़ हस्त में श्रीराम की विजय-ध्वजा विराज रही है एवं आपके स्कन्ध पर मूँज का यज्ञोपवीत शोभित हो रहा है।

व्याख्या – यह झाँकी श्रीभरत जी के समक्ष ब्राह्मण वेष में पधारे हुए श्री आञ्जनेय की है। इनके हाथ में श्रीराघवजी की विजय वैजयन्ती फहरा रही है। यथा **भानुकुल भानु कीरति पताका** (वि.प. २६७)।

काँधे पर मूँज का यज्ञोपवीत आञ्जनेय के अखण्ड ब्रह्मचर्य को सूचित करता है अथवा उनके हाथ में वज्र के समान शत्रुदल-नाशिनी गदा एवं वैष्णवविजयध्वजा विराजमान हैं। इस व्याख्या से व्यञ्जित हनुमान जी का गदाधारण ध्वनित होता है।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

शंकर स्वयं केशरीनन्दन। तेज प्रताप महा जग बंदन॥ ६ ॥

शब्दार्थ – स्वयं - साक्षात्।

अर्थ – हे प्रभो। आप साक्षात् श्रीशङ्कर भगवान् अर्थात् उनके अभिन्न अंश तथा केशरी के नन्दन (क्षेत्रज) पुत्र हैं। आपका तेज एवं प्रताप महान् है तथा आप सम्पूर्ण जगत के द्वारा वंदित हैं।

व्याख्या – अर्थात् स्वयं शिव ही केशरी नन्दन के रूप में पधारे। यथा रुद्र अवतार संसार पाता (वि.प. २५-३)। शंकर स्वयं केशरी नंदन यह प्रसंग अद्यावधि बहुतसे जिज्ञासुओं की जिज्ञासा एवं अनेक शंकालुओं की शंका का केन्द्र बिन्दु बना रहा है क्योंकि एक ही हनुमान जी महाराज को पवनसुत एवं केशरीनन्दन शब्द से अभिहित किया गया है। एक पुत्र के दो पिता कैसे सम्भव हैं। पर इसका समाधान श्रीराघव की कृपा से अत्यन्त सरल एवं सुबोध है। सौभाग्य का विषय है कि श्रीहनुमान जी के न केवल दो अपितु तीन पिताओं का प्रमाण हनुमान चालीसा में ही प्राप्त हो जाता है

(१) पवनसुत नामा (ह.चा. २)

(२) केशरी नन्दन (ह.चा. ६)

(३) राम दुलारे (ह.चा. ३०)

इसका उत्तर यह है कि श्रीहनुमान जी श्रीपवन के औरस पुत्र हैं। यथा मारुतस्यौरसः पुत्रः (वा.रा. ४-६६-७)। क्योंकि वायुदेव ने ही साक्षात् शिव के तेज को अञ्जना के गर्भ में समाहित किया था क्योंकि उनके बिना इस पवित्र तेज को कोई भी अञ्जना तक पहुँचा नहीं सकता था। चूँकि शिवजी अंशतः आञ्जनेयके रूप में अवतीर्ण हुए अतः स्वयं शब्द अंश के ही अर्थ में व्यवहृत हुआ। चूँकि वे केशरी जी की पत्नी में प्रकट हुए, अतः वह केशरी नामक वानर के क्षेत्रज पुत्र कहलाये। यथा सकैं न बिलोकि बेष केशरीकुमार को (क. ५-१२)। श्रीराम जी ने उन्हें वात्सल्य प्रदान किया। अतः उनके मानस-पुत्र हुए। यथा –

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

– रा.च.मा. ५-३२-७

इस प्रकार उपासना की दृष्टि से श्रीआञ्जनेय वायु के औरस पुत्र, ज्ञानकी दृष्टि से शिवजी के अभिन्न अंश, कर्मकाण्ड की दृष्टि से कपिकुलतिलक केशरी के क्षेत्रजपुत्र एवं शरणागति की दृष्टि से श्रीराघव के मानस पुत्र हैं।

तेज प्रताप महा जग बंदन - इनका तेज एवं प्रताप महान् है। यथा –

(१) तेज को निधान मानो कोटिक कृसानु भानु (क. ५-४)।

(२) वेग जीत्यो मारुत प्रताप मारतण्ड कोटि (क. ५-९)।

प्रचलित प्रति में शंकर सुवन पाठ मिलता है।[१] इसका अर्थ - शिव के तेज को वायुदेव श्रीअञ्जना के गर्भ में समाहित किए। यह वायु शिवजी की अष्टम मूर्ति कहे जाते हैं। यथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् के मङ्गलाचरण में महाकवि कालिदास लिखते हैं यया प्राणिनः प्राणवन्तः (अ.शा. १-१) - अर्थात् जिस वायुमयी शिवजी की मूर्ति से समस्त प्राणियों की प्राण रक्षा होती है। अतः इन्हीं शिवजी की अष्टम मूर्ति भगवान् वायु के औरस पुत्र होने के कारण हनुमान जी शंकर सुवन कहे जाते हैं (वायु-रूप-शंकर के पुत्र)। यद्वा पौराणिक गाथाओं से स्पष्ट है कि अञ्जना की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने उनके यहाँ पुत्ररूप में आने का वरदान दिया अतः अंश में ही यहाँ सुवन शब्द का व्यवहार है।

[१] गुरुदेव द्वारा सम्पादित श्रीहनुमानचालीसा के प्रामाणिक संस्करण में शंकर स्वयं पाठ है – जालस्थल सम्पादक।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

विद्यावान गुणी अति चातुर। राम काज करिबे को आतुर॥ ७ ॥

शब्दार्थ – आतुर - उत्सुक।

अर्थ – हे आञ्जनेय आप समस्त विद्याओं के प्रशस्त भण्डार हैं एवं समस्त गुण आप में निवास करते हैं एवं आप अत्यन्त चतुर हैं तथा श्रीरामचन्द्रजी के कार्य को करने के लिए उत्सुक रहा करते हैं।

व्याख्या – बिद्या शब्द यहां अष्टादश विद्याओं को संकेत करता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीहनुमान जी ने श्रीमानस के धरातल पर तीन बार ब्राह्मण वेष बनाया। प्रथम बार श्रीराम-लक्ष्मण के समक्ष। श्रीराम विद्यानिधि हैं। यथा बिद्या बिनय निपुन गुन शीला (रा.च.मा. १-२०४-६), बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही (रा.च.मा. १-२०९-७)। अतः विद्यानिधि के समक्ष हनुमान जी ने ब्रह्म विषयक प्रश्न करके अपनी विद्या प्रखरता का परिचय दिया। द्वितीय बार विभीषण के समक्ष लंका में। यहाँ विभीषण के आकुलत्व रूप गुण को देखकर उन्हें राम परत्व का उपदेश कर अपनी गुणज्ञता का परिचय दिया। क्योंकि

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जाकर मन राता॥

– रा.च.मा. ७- १२७-१,२

आञ्जनेय विभीषण से कह पड़ते हैं –

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे विलोचन नीर॥

– रा.च.मा. ५-७

तृतीय बार नन्दिग्राम में भरत जी के समक्ष। यहाँ आञ्जनेय का लोकोत्तर चातुर्य दृष्टिगोचर होता है। श्रीभरतभद्र अविराम अश्रुधारा से श्रीरामभद्र के भावनामय पादपद्म का अभिषेक कर रहे हैं। राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात (रा.च.मा. ७-१ख)। अतः श्रीहनुमान जी सामने नहीं आते। क्योंकि अश्रुपात काल में ठीक-ठीक न दीख पड़ने से पूर्व की भाँति फिर कोई अन्यथा अनुमान न हो जाय इसलिए बोलेउ स्रवन सुधासम बानी (रा.च.मा. ७-२-२) उनके कान में जाकर बोले। तीन चौपाइयों में श्रीराघव के आगमन का समाचार सुनाकर श्रीभरत को उन्होंने विरह, भय तथा विषाद से मुक्त किया। और भरतभद्र ने नाहिन तात उरिन मैं तोही (रा.च.मा. ७-२-१४) कहकर कृतज्ञता ज्ञापन किया। ग्रन्थ गौरव के भय से सूत्ररूप में दिग्दर्शन कराया गया। विज्ञ पाठक तीनों प्रसंगों की स्वयं संगति लगा लेंगे।

श्रीराम-काज करने के लिए वे इतने आतुर हैं कि क्षण-भर भी विश्राम उचित नहीं मानते और नागपाश में बँधकर भी लज्जा का अनुभव नहीं करते। यथा

(१) राम काज कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम (रा.च.मा. ५-१)।

(२) मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥ (रा.च.मा. ५-२२-६)

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया। राम लखन सीता मन बसिया॥ ८ ॥

शब्दार्थ – रसिया - रसिक। बसिया - निवास करने वाले।

अर्थ – हे मारुते। आप श्रीराघवजू के चरितामृत को सुनने के अद्‌वितीय रसिक हैं एवं आपके मन मन्दिर में श्रीराम, श्रीलक्ष्मण एवं श्रीसीता का निवास है यद्‌वा आपही वात्सल्यातिशय होने से श्रीराम, लक्ष्मण एवं श्रीसीताजी के मन में निवास करते हैं।

व्याख्या – प्रभु-चरित्र श्रवण के श्रीहनुमान जी इतने रसिक हैं कि कथा के लोभ में इन्होंने प्रभुका सान्निध्य ठुकरा दिया। राज्याभिषेक के पश्चात् राजाधिराज श्रीराम ने सम्पूर्ण वानर-भालुओं को विविध दान एवं प्रीतिदान देकर विसर्जित किया एवं श्रीआञ्जनेयसे अपने परम धाम में रहने के लिए मूक इच्छा व्यक्त की। तब श्रीमारुति ने मूक भाषा में अन्तर प्रश्न किया कि आप अपने परम धाम में मेरे रामायण कथा-श्रवण की व्यवस्था करेंगे। श्रीरामभद्रजू को निरुत्तर देखकर हनुमानजी महाराज ने पुनः कहा –

यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः॥

– वा.रा. ७-४०-१७

अतः हे वीर जब तक आपकी श्रीरामायण-कथा इस भूमण्डलपर चलती रहेगी, तब तक आपकी आज्ञा से मेरे शरीर पर प्राण विद्‌यमान रहेगें। श्रीराम ने भी इस वरदान को स्वीकारते हुए कहा –

चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका।
तावत्ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा॥

– वा.रा. ७-४०-२०

अर्थात् जब तक इस लोक में मेरी कथा चलेगी तब तक तुम्हारी कीर्ति अचल रहेगी एवं तुम्हारे शरीर में प्राण तब तक वर्तमान रहेंगे। राम-कथा के लोभ में कालनेमिका षड्‌यन्त्र भी उन्हें क्षणमात्र तक स्वीकार्य-सा हो गया। स्वयं श्रीराम-कथा श्रवणमात्र से हनुमान जी के नेत्र-कमल सजल हो जाते हैं और वाणी शिथिल हो जाती है। यथा जयति रामायण श्रवण संजात रोमाञ्च लोचन सजल शिथिल वाणी (वि.प. २९-५)। श्रीराम-कथा के निमित्त ही जिन्होंने साकेत के सुख को ठुकराकर धराधाम पर विचरण करते हुए राम-कथा श्रवणार्थ अपना जीवन रक्खा ऐसे श्रीआञ्जनेय के समान श्रीराम-कथा का और कौन रसिक हो सकता है। श्रीहनुमान जी की श्रीराम-कथा विषय का वर्णन करते हुए अतिमानसस्तोत्र में श्रीवत्साङ्कमिश्र कहते हैं –

ईदृग्गुणो ननु बभूविथ राघवत्वे यस्तावकं सुचरितं सकृदन्वभुङ्क्त।
सोऽत्रैव हन्त हनुमान् परमां विमुक्तिं बुद्‌ध्याऽवधूय चरितं तव सेवतेऽसौ॥

– अ.मा.स्तो. ३२

अर्थात् रामावतार में श्रीराघवेन्द्र ने ऐसे दिव्य गुण गणों का आविर्भाव किया जिनके श्रवण-लोभवश श्रीआञ्जनेयने हस्तगत मुक्ति को भी ठुकरा दिया।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। बिकट रूप धरि लंक जरावा॥ ९ ॥

शब्दार्थ – बिकट - भयंकर।

अर्थ – हे मारुतेय। आपने अत्यन्त लघु बन्दर का रूप धारण करके माता सीता के दर्शन किए और अत्यन्त विशाल एवं भयावह रूप धारण करके रावण की नगरी लङ्का को जला दिया।

व्याख्या – अशोक वाटिका में हनुमान जी का इतना लघुतम रूप हुआ कि उन्होंने अपने को वृक्ष के पल्लवों में छिपा रक्खा –

तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। करइ विचार करौं का भाई॥

– रा.च.मा. ५-९-१

अध्यात्म रामायण में इन्हें कलविङ्कसमाकारः कहा गया है अर्थात् छोटी गौरैया के समान उनका आकार था। यहाँ यह शङ्का करना निरर्थक है कि मुद्रिका कहाँ रही होगी। मुद्रिका भगवान् के श्रीविग्रह का आभूषण होने से चिन्मय है। अतः परिस्थिति के अनुसार लघुता एवं गौरव उसके लिए सहज है। गीतावली जी में सीता-मुद्रिका संवाद भी वर्णित है। मुद्रिका स्पष्ट कहती है कि नींद भूख न देवरहि परिहरे को पछिताउ (गी. ५-४-२)। जो श्रीसीताजी को श्रीराघव के समाचार सुना सकती है उसकी लघुता एवं गुरुता के विषय में सन्देह को स्थान ही कहाँ। हनुमानजी के लघु रूप को देखकर श्रीसीताजी को लीलापक्ष में संदेह हो गया। पुनः उन्होंने भीम रूप की झाँकी से मैथिली के संदेह को दूर किया। यथा –

मोरे हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रकट कीन्ह निज देहा॥
कनक भूधराकार शरीरा। समर भयंकर अति बलबीरा॥
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघुरूप पवन सुत लयऊ॥

– रा.च.मा. ५-१६-७,८,९

लंकादहन में तो इनका विकट रूप प्रसिद्ध ही है, विशेष कवितावली सुन्दरकाण्ड द्रष्टव्य है। इसी अवसर पर रावण को अपना रुद्ररूप प्रदर्शित करने हेतु हनुमान जी ने अपना पञ्चमुखी रूप प्रदर्शित किया।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

भीम रूप धरि असुर सँहारे। रामचन्द्र के काज सँवारे॥ १० ॥

शब्दार्थ – भीम - बीभत्स तथा धीरों को भी त्रास देने वाला।

अर्थ – आपने महाकाल को भी भयभीत करने वाले भीम रूपको धारणकर रावणपक्षीय असुरों का संहार किया एवं भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के समस्त कार्यों को सँवारा।

व्याख्या – इनकी भीमता देखकर महाभारत काल के धुरन्धर वीर भीम ने भी अपनी आँखें बन्द कर ली थीं। एक बार द्रौपदी की रुचिरञ्जन के लिए स्वर्ण किञ्जल्कयुक्त कमल लेने भीमसेन श्रीहनुमान जी के निवासस्थान गन्धमादन के निकट कदलीवन पधारे। भीम को उद्धत देखकर हनुमान वृद्ध बन्दर का रूप धारण कर मार्ग में लेट गये। भीम ने मार्ग छोड़ने का अनुरोध किया। श्रीआञ्जनेयने सहजता से कहा कि "मैं वृद्ध हूँ, अतः मेरी पूँछ उठाकर मुझे इस स्थान से हटा दो।" भीम की सभी चेष्टायें असफल हुईं पर हनुमान जी की पूँछ टस से मस न हुई। अनन्तर अपने को श्रीहत देखकर उस वृद्ध वानर वानरेन्द्र को उन्होंने पहचान लिया और मारुति को प्रणामकर उनके मौलिक रूप को देखने की इच्छा प्रकट करी। श्रीहनुमान जी ने अपना स्वर्णशैल संकाश शरीर प्रस्तुत किया। उनके कथा-श्रवण में व्यतिक्रम जानकर शीघ्र जाने के लिए आदिष्ट करते हुए बोले –

ततस्त्वप्सरसस्तात गन्धर्वाश्च तथानघ।
तस्य वीरस्य चरितं गायन्ती रमयन्ति माम्॥

– म.भा. ३-१४७-३९

हे भीम। स्वर्ग की श्रेष्ठ अप्सरायें एवं तुम्बुरु आदि कुशलगायक गन्धर्व भगवान् श्रीराघव के चारु चरित को गाते हुए मुझे परमानन्द-सुधा-सागर में मग्न किए रहते हैं। यह कथा महाभारत वनपर्व में स्पष्ट है। इसी का उद्धरण गोस्वामीजी ने कवितावली में प्रस्तुत किया है **कौन के तेज बलसीम भट भीम से भीमता निरखि कर नयन ढाँके** (क. ६-४५)। असुर-संहारका क्या कहना। आञ्जनेय के संग्राम की प्रशंसा श्रीरामचन्द्र स्वयं करते हैं –

हाथिन सों हाथी मारे घोरेसों सँघारे घोरे रथन सों रथ बिदरनि बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहे हहरानि फौजें भहरानी जातुघान की।
बार बार सेवक सराहना करत राम तुलसी सराहे रीति साहिब सुजान की।
लम्बी लूम लपटि झपटि पटकत भट देखो देखो लखन लरनि हनुमान की॥

– क. ६-६२

श्रीराम जी के समस्त कार्यों को हनुमान जी ने सजा दिया। भाव यह है कि रावणादिका वध राघव की इच्छा से हो सकता था पर विभीषणादिका उद्धार आञ्जनेय के बिना कथमपि संभव नहीं था। कारण कि जब तक जीव रघुनाथ जी के सम्मुख नहीं होता तब तक उसके पाप नष्ट नहीं होते। यथा –

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

– रा.च.मा. ५-४४-२

श्रीरघुनाथ जी समस्त प्राणिमात्र के सम्मुख होकर भी जीव की सम्मुखता के बिना उसका कल्याण नहीं कर सकते। यथा **सन्मुख सबकी ओर** । अतः गोस्वामीजी यह अनुरोध करते हैं कि अनादि काल से भगवत्पाद-पद्म-विमुख इस जड़ जीव को श्रीमन्मारुति के बिना कौन श्रीराम-सन्मुख कर सकता है। यथा –

आते आञ्जनेय न जो व्याकुल धरा पै आज क्षुधित जनों को भक्ति अमिय पिलाता कौन।
कौन दर्शाता रामधाम का पवित्र पंथ राम नाम मंजु मणिदीपक जलाता कौन।
कौन सरसाता उर भाव सरसीरुह को राम प्रेम मधुर सुमोदक खिलाता कौन।
रामगुण गायक बनाता कौन गिरिधर को मुझसे पतित को पथ सुमति दिलाता कौन॥
आते आञ्जनेय जो न अमल अवनि पै आज वैष्णवों की विजय वैजयन्ती फहराता कौन।
कौन लाँघ जाता शतयोजन पयोनिधि को मैथिली का विरह दवानल बुझाता कौन।

कौन लिपटाता रघुबीर पद पंकज में राजीवनयन के नयन नीर से नहाता कौन।
साधन विहीन दृगहीन मूढ़ गिरिधर को मानस मंदाकिनी में मज्जन कराता कौन॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि आञ्जनेयका चरित्र श्रीराघवजी की लीला का शृंगार है और यही सँवारे पदका स्वारस्य है। यथा काज महाराज के समाज सब साजे हैं (ह.बा. १५), सकल समाज साज साजे रघुबर के (ह.बा. ३३)।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

लाय सँजीवनि लखन जियाये। श्री रघुबीर हरषि उर लाये॥ ११ ॥

शब्दार्थ – सँजीवनि - द्रोणाचल से लाई हुई मृतसञ्जीवनी।

अर्थ – हे पवननन्दन। आपने द्रोणाचल से मृतसञ्जीवनी ले आकर श्रीलक्ष्मण को जिलाया तथा रघुबीर रामभद्रजूने प्रसन्नता से आपको अपने हृदय से लगा लिया।

व्याख्या – काल के विजेता मेघनाद ने कालस्वरूप श्रीलक्ष्मण को वीरघातिनी शक्ति से मूर्च्छित किया। अनन्तर करालं महाकाल कालं कृपालं (रा.च.मा. ७-१०८-२) श्रीहनुमान जी मूर्च्छित काल को कालातीत श्रीराघव पास ले आये तथा सुषेण के निर्देशानुसार सञ्जीवनी ले आकर श्रीलक्ष्मण को प्राणदान दिया एवं श्रीराघव के मङ्गलमय परिष्वङ्ग का अनुभव किया। यथा –

हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना॥

– रा.च.मा. ६-६२-१

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई। तुम मम प्रिय भरतहिं सम भाई॥ १२ ॥

शब्दार्थ – रघुपति - रघुवंश के स्वामी अथवा रघु अर्थात् जीव मात्र के स्वामी श्रीराम। लङ्घन्ति पापपुण्यानि ये ते रघवो जीवास्तेषां पती रघुपतिः।

अर्थ – रघुकुल के स्वामी तथा समस्त प्राणिमात्र के ईश्वर श्रीरामचन्द्र जी ने आपकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि तुम मुझे भाई भरत के समान प्रिय हो।

व्याख्या – भाई शब्द का अन्वय भरतहि के साथ ही उचित होगा अर्थात् भाई भरत के समान तुम मुझे प्रिय हो। हनुमान जी के साथ भाई शब्द का अन्वय करने से यथा सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाही (रा.च.मा. ५-३२-७) इस अर्धाली की एकवाक्यता नहीं संगत होगी क्योंकि यहाँ श्रीराघव ने आञ्जनेयको पुत्र कहा। ध्यान रहे कि श्रीलक्ष्मण से श्रीहनुमान जी का इतना वैशिष्ट्य अवश्य है कि श्रीरघुनाथ जी श्रीलक्ष्मणजी को भाई तथा पुत्र दोनों मानते हैं। भाई यथा अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई (रा.च.मा. २-७१-१)। पुत्र यथा अब अपलोक शोक सुत तोरा (रा.च.मा. ६-६१-३१)। पर हनुमानजी को केवल पुत्र रूप में ही स्वीकारते हैं यथा सिय सुखदायक दुलारो रघुनायक को (ह.बा. १०)।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

सहसबदन तुम्हरो जस गावैं। अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं॥ १३ ॥

शब्दार्थ – सहसबदन - शेष। श्रीपति - सीतापति श्री राम।

अर्थ – सहस्र मुख वाले शेष तुम्हारा यश गाते हैं तथा गाते रहेंगे। ऐसा कहकर श्रीसीता के पति श्रीराम हनुमान जी को बार-बार गले से लगा रहे हैं।

व्याख्या – श्रीहनुमान जी की यह ध्यान झाँकी श्रीलक्ष्मण-मूर्च्छा-समाप्ति के पश्चात्काल की है। श्रीलक्ष्मण जी को मूर्च्छामुक्त देखकर उन्मुक्त कण्ठ से प्रशंसाकर श्रीराघव जी ने हनुमानजी को गले से लगा लिया। सहस बदन यहाँ श्रीलक्ष्मण जी के लिए अभिप्रेत है। यथा –

शेष सहस्र शीष जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय दारन॥

– रा.च.मा. १-१७-७

भाव यह है कि आञ्जनेय तुम्हारे इस परम पावन यश को सहस्रमुख शेषावतार श्रीलक्ष्मण भी गाते रहेंगे। क्योंकि रणशय्या पर शान्त हुए अनन्त को भी जीवन दान दिया।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

सनकादिक ब्रह्मादि मुनीशा। नारद सारद सहित अहीशा॥ १४ ॥

शब्दार्थ – सनकादिक - सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार (ये चार ब्रह्मा जी के प्रथम ऊर्ध्वरेता पुत्र हैं)।

अर्थ – श्रीराघव प्रशंसा के शब्दों में कह रहे हैं कि हे वत्स। तुम्हारे इस परम पावन यशको न केवल शेष अपितु सनकादिक ऊर्ध्वरेता ऋषि, ब्रह्मादि देवगण, मुनियों में श्रेष्ठ भगवान् नारद, सरस्वती के सहित अहीश्वर (विष्णु व शङ्कर) भी गाते रहेंगे।

व्याख्या – इस चौपाई में भी पूर्व क्रिया गावैं का अन्वय होगा। भाव यह है कि तुम्हारा लक्ष्मण जीवनदानरूप परम पावन यश त्रिलोकविदित हो जायेगा। अतः पाताल में शेष, मर्त्यलोक में सनकादि एवं नारद, तथा स्वर्गलोक में ब्रह्मादि, शारदा एवं विष्णु तथा शङ्कर भी गाएंगे। पूर्व में शेष के लिए सहसबदन शब्द का प्रयोग हो चुका है। अतः यहाँ अहीशा पद अहितल्पवासी विष्णु यद्वा अहिकौपीनधारी श्रीशिव का बोधक है। यथा विष्णु जौ अहि सेज शयन हरि करहीं (रा.च.मा. १-६९-५)। शिव जटा मुकुट अहि मौर सँवारा (रा.च.मा. १-९२-१), कुंडल कंकन पहिरे व्याला (रा.च.मा. १-९२-२), भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी (रा.च.मा. १-१०६-८) आदि।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कबि कोबिद कहि सकैं कहाँ ते॥ १५ ॥

शब्दार्थ – कोर्वेदस्य विदो वेत्ता कोविदः परिकीर्तितः । को अर्थात् वेद, विद अर्थात् जानने वाला। इस प्रकार कोविद - वेदज्ञ।

अर्थ – यम कुबेर आदि यावन्मात्र दिक्पाल हैं वे भी तुम्हारा यह यश गाते रहेंगे। इस अनन्त यश को सामान्य कवि एवं वेदज्ञ विद्वान कहाँ से कह सकते हैं।

व्याख्या – यहाँ जहाँ ते शब्द के साथ पूर्व क्रिया गावैं का अन्वय होगा। श्रीहनुमानचालीसा की प्रथम चौपाई से लेकर दसवीं चौपाई तक गोस्वामीजी ने श्रीरामजी के वात्सल्य भाजन श्रीआञ्जनेय के मङ्गलमय स्वरूप तथा गुणका वर्णन किया। अनन्तर ग्यारहवीं चौपाई से बीसवीं चौपाई तक श्रीहनुमानजी के श्रीराघवयश भूमिकारूप चारु चरित्र का वर्णन कर रहे हैं। जिसमें ग्यारहवीं चौपाई से पन्द्रहवीं चौपाई तक लक्ष्मणमूर्च्छा प्रसंग में प्रस्तुत की हुई हनुमान जी की महत्तम भूमिका का वर्णन है। मानो यही पाँच चौपाइयाँ महामंत्र के तात्पर्य के रूप में कही गयी हैं। लक्ष्मणमूर्च्छा-प्रसंग का दार्शनिक तात्पर्य बड़ा मनोरंजक तथा साभिप्राय है। जैसे मेघनाद की शक्ति से मूर्च्छित श्रीलक्ष्मण को आञ्जनेय जी ने द्रोणाचल से संजीवनी लाकर जीवन-दान दिया, उसी प्रकार आसक्ति रूप वीरघातिनी से मूर्च्छित हुए जीवों को वैराग्यवान् संत रामनामरूप हनुमानजी सद्गुरु सुषेण वैद्य की अनुमति से वेदपुराणरूप द्रोणाचल में वर्तमान, रामभक्तिरूप सञ्जीवनी ले आकर श्रीराम-तत्त्वरूप जीवनदान देते रहें, इसी उद्देश्य से श्रीहनुमान-चालीसा में यह प्रसंग निबद्ध किया गया। दिक्पाल ८ हैं - इन्द्र, ईशान, कुबेर, अग्नि, वरुण, वायु, यम, नैर्ऋत्य।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा। राम मिलाय राज पद दीन्हा॥ १६ ॥

शब्दार्थ – उपकार - भलाई।

अर्थ – आपने सुग्रीव का महान् उपकार किया तथा उन्हें श्रीरामजीका दर्शन कराकर किष्किन्धा का साम्राज्य दे दिया।

व्याख्या – भाव यह है कि आपके बिना सुग्रीव कुछ भी नहीं कर पाते। पहले उन्हें श्रीराम जी को देखकर भय हुआ, पर उन्होंने जब आपकी पीठ पर बैठे हुए श्रीरामजी को देखा तभी सम्यक् दर्शन हुआ। क्योंकि परमात्मा का सम्यक् दर्शन संत-दृष्टि के बिना सम्भव नहीं है। यथा –

तँह रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥

– रा.च.मा. ४-१-२,३

पश्चात् सम्यक् दर्शन –

जब सुग्रीव राम कहँ देखा। अतिशय जन्म धन्य करि लेखा॥

– रा.च.मा. ४-४-६

राम मिलाय - श्रीराम जी से मिलने की सुग्रीव में कोई योग्यता नहीं थी, पर आपने अपनी विशेष कृपा के आधार पर श्रीराम जी को सुग्रीव के पास ले जाकर उन्हें कृतकृत्य किया। अतः आञ्जनेय को सुग्रीवदुर्विधिबन्धु कहा गया है।

राजपद दीन्हा - भाव यह है कि आपने सुग्रीव को राजपद एवं रामपद देकर मुक्ति तथा भुक्ति दोनों का अधिकारी बना दिया है। वैसी ही कृपा हम असमर्थ जीवों पर करें।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

तुम्हरो मन्त्र बिभीषन माना। लंकेश्वर भए सब जग जाना॥ १७ ॥

शब्दार्थ – मन्त्र - भगवत्प्रपत्तिसिद्धान्त।

अर्थ – हे आञ्जनेय। विभीषण ने आपके रामप्रेमरूप मूलमन्त्र को स्वीकारा। उसके परिणाम स्वरूप वे लङ्का के कल्पान्त शासक स्वामी बन गये। यह सारा संसार जानता है।

व्याख्या – विभीषण ने लङ्का में अपर रात्रिकाल के प्रथम साक्षात्कार के अनन्तर निराशा भरे स्वर में आञ्जनेय से कहा –

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहैं कृपा भानुकुल नाथा॥

– रा.च.मा. ५-७-२

अर्थात् भानुकुलनाथ ने भानुपुत्र पर कृपा की क्योंकि वह उनके कुलप्रवर्तक का पुत्र है, पर मुझमें कोई पात्रता नहीं है। श्रीआञ्जनेय ने कहा "विभीषण। भगवत्स्मरण ही उनकी कृपा का एकमात्र असाधारण साधन है।" यथा –

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहि दुखारी॥

– रा.च.मा. ५-८-१

इसी मन्त्र ने विभीषण को लङ्केश्वर बना दिया। हनुमान जी ने सुग्रीव तथा विभीषण इन दो महानुभावों को भगवान् से जोड़ा। एक के यहाँ प्रभु को ले गये और एक को प्रभु के पास ले आये। सुग्रीव को प्रभु का प्रभाव सुनाकर एवं विभीषण को प्रभु का स्वभाव समझाकर। उसी प्रकार हम विषयी साधकों को भी प्रभु कृपा का अनुभव करायें।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

जुग सहस्र जोजन पर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥ १८ ॥

शब्दार्थ – जुग सहस्र जोजन - जुग अर्थात् अनेक हजार योजन। भानू - सूर्य।

अर्थ – हे केशरीकुमार। धरातल से हजारों योजन किंवा अनेकों हजार योजन दूर ऊपर वर्तमान सूर्यनारायण को आपने अपने जन्म के एक दिन बाद मधुर फल की भ्रान्ति से निगल लिया था।

व्याख्या – युग शब्द का युगल पर्याय होने से दो-दो एवं एकसे अनेक अर्थ भी होता है। वस्तुतः संस्कृत में शत से ऊपर की संख्यायें अनन्त वाचिका होती हैं। यथा शताधिकाः समाः सङ्ख्या गेयाश्चानन्त्यवाचिकाः। इस दृष्टिसे युग सहस्र का अर्थ होगा अगणित योजन।

यह घटना सम्भवतः कार्तिक कृष्ण अमावस्या की है। अमावस्या को ही अपनी सन्धि में राहु सूर्य-ग्रहण की परिस्थिति प्रस्तुत करता है। श्रीहनुमानजी का प्राकट्य कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी मंगलवार को प्रभात वेला में मेष लग्न तथा स्वाति नक्षत्र में श्रीअञ्जना के गर्भ से हुआ था। यथा –

ऊर्जे कृष्णचतुर्दश्यां भौमे स्वात्यां सदाशिवः।
मेषलग्नेऽञ्जनागर्भात्प्रादुर्भूतो महेश्वरः॥

वाल्मीकिके अनुसार सूर्यनारायण पर आञ्जनेयजी के आक्रमण ही चर्चा है तथा इन्द्र के द्वारा इनके वाम हनु (ठोड़ी)पर वज्र का प्रहार हुआ, पर उसमें कोई विकृति नहीं आई। इसलिए प्राशस्त्य अर्थ में मतुप् प्रत्यय करके परम पराक्रमी इन्द्र ने इनका नाम हनुमान् रखा। कुछ लोग वामो हनुरभज्यत (वा.रा. ४-६५-२२) का अर्थ करते हैं कि वामो हनुर्भग्नोऽभवत् अर्थात् हनुमानजी का वाम हनु किञ्चित् भङ्ग हो गया। यह अर्थ उन्होंने भञ्जो धातु (भञ्जो आमर्दने धा.पा. १४५३) निष्पन्न अभज्यत शब्दके आधार पर किया है पर अभज्यत रूप भज धातु (भज सेवायाम् धा.पा. ९९८) कर्मवाच्य लङ्लकार के प्रथमपुरुष के एकवचन में भी निष्पन्न होता है। अभज्यत असेव्यत सेवितोऽभवत् अर्थात् इन्द्र के वज्र से हनुमानजी का वाम हनु सेवित हुआ, टूटा नहीं, इसलिए इन वानर का आजसे हनुमान् नाम विख्यात होगा। क्योंकि यदि श्रीहनुमान् का हनु टूट गया होता तब हनुमान् शब्द में मतुप् प्रत्यय कैसे निष्पन्न होता। क्योंकि मतुप् प्रत्यय सत्ता और प्रशंसा अर्थ में होता है –

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥

– भा.पा.सू. ५-२-९४

भाष्यकार के अनुसार निन्दा अर्थ में इनि प्रत्यय होता है, तथा प्रशंसा अर्थ में मतुप् ही होता है। जैसे किसी निर्धन को धनवान् नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार टूटे हुए हनु वाले व्यक्ति को हनुमान् कैसे कहा जायेगा। इसीलिए इन्द्र कहते हैं –

मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथाऽहतः।
नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति॥

– वा.रा. ७-३६-११

अर्थात् मेरे द्वारा फेंके गये वज्र से इनका हनु अहतः अर्थात् नहीं टूटा इसलिए इन वानर श्रेष्ठ का आज से हनुमान् नाम प्रचलित होगा। विनय-पत्रिका में भी गोस्वामीजी इसी सिद्धान्तकी पुष्टि करते हैं। यथा जाकी चिबुक चोट चूरन किए रद मद कुलिश कठोर को (वि.प. ३१-४)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकीय रामायण के अनुसार हनुमान जी ने सूर्य को निगला नहीं, पर हनुमान-चालीसा में लील्यो ताहि मधुर फल जानू कह रहे हैं। इस पक्षकी पुष्टि गोस्वामी जी विनयपत्रिका में करते हैं चंडकरमंडलग्रासकर्त्ता (वि.प. २५-२)। इस विरोध का समाधान कल्पभेद से हो जाता है। वाल्मीकि कथा में हनुमान जी ने सूर्यनारायण को नहीं ग्रसा था, विनयपत्रिका तथा हनुमानचालीसा के घटना कल्प में ग्रस लिया था। देवताओं की विनती पर छोड़ा। सूर्यनारायण को ग्रसना असम्भव नहीं है क्योंकि कार्य कारण में विलीन होते हैं। अतः तेजस्तत्त्वसूर्य वायुतत्त्वरूप हनुमान में विलीन हों यह अत्यन्त उचित है।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं॥ १९ ॥

शब्दार्थ – मेलि - डालकर। जलधि - समुद्र।

अर्थ – प्रभु आप श्रीरामजी की दी हुई रामनामांकित मुद्रिका को मुख में लेकर शत योजन विस्तीर्ण समुद्र को लाँघ गए, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

व्याख्या – दो शरणागतियों में प्रधान भूमिका का निर्देश कर हनुमान जी में तारणत्व गुण का वर्णन किया। अब तरणत्वका वर्णन कर रहे हैं। अर्थात् हनुमान जी सुग्रीव एवं विभीषण को सागर से तारकर स्वयं भी तर जाते हैं। सुग्रीव के लिए नाम-सेतु तथा विभीषण के लिए कृपा-सेतु की व्यवस्था करते हैं, एवं स्वयं प्रभु मुद्रिका को मुख में लेकर राम-नामामृत चूसते हुए कौतुक में समुद्र को पार करते हैं। यथा –

कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी अशंका॥

– रा.च.मा. ६-३६-४

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥ २० ॥

शब्दार्थ – दुर्गम - कठिन। सुलभ - सरल। अनुग्रह - कृपा।

अर्थ – हे महाबीर जी। संसार के जितने भी कठिन से भी कठिन कार्य हैं वे सब आपकी कृपा से सरल हो जाते हैं।

व्याख्या – क्योंकि आप सुग्रीव तथा विभीषण के लिए तारण एवं स्वयं तरण हैं तथा जटिल से जटिल कार्य आपने किया है। यथा –

मन को अगम तन सुगम किये कपीस काज महाराज के समाज साज साजे हैं।
देव बंदीछोर रनरोर केसरी किसोर जुग जुग जग तेरे बिरद बिराजे हैं।
बीर बरजोर घटि जोर तुलसी की ओर सुनि सकुचाने साधु खल गन गाजे हैं।
बिगरी सँवारि अँजनीकुमार कीजे मोहि जैसे होत आये हनुमान के निवाजे हैं॥

– ह.बा. १५

यहाँ आञ्जनेय के चरित्र वर्णन का उपसंहार करके अब कृपा की आवश्यकता का उपपादन करते हैं।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे॥ २१ ॥

शब्दार्थ – पैसारे - प्रवेश।

अर्थ – हे अंजनीपुत्र। आप श्रीरामभद्रजू के राजद्वार के रक्षक प्रतिहार द्वारपाल हैं। आपकी आज्ञा के बिना किसी का भी श्रीरामजी के परमधाम में प्रवेश नहीं हो सकता।

व्याख्या – श्रीरामोपासना में श्रीहनुमान जी की कृपा परम उपादेय है क्योंकि यही राजाधिराज के जागरूक द्वारपाल हैं। इनकी प्रतिकूलता में जीव को श्रीराघव का आनुकूल्य नहीं प्राप्त हो सकता। अन्यत्र द्वारपाल स्वामी की आज्ञा से आगन्तुकको भवन में प्रविष्ट करता है, पर यहाँ तो स्वामी एवं सेवक की इतनी एकता है कि आञ्जनेय की आज्ञा ही सर्वोपरि हो जाती है। सुग्रीव एवं विभीषण की शरणागति में प्रभु से बिना पूछे ही इन्होंने दोनों को प्रवेशपत्र दे दिया, कारण कि वे अपने प्रभु से इतने एकरूप हो चुके हैं कि इनके विरुद्ध कभी कोई चेष्टा करते ही नहीं और श्रीरामजी भी आञ्जनेय का अदब मानते हैं। यथा सेवक सेवकाई जानि जानकीश मानै कानि (ह.बा. १२)।

पैसारे शब्द पदसार शब्द का तद्भव है। पादेन सरणं पदसारः प्रवेश इत्यर्थः। यह शब्द प्रवेश के अर्थ में श्रीमानसजी में भी प्रयुक्त हुआ है। यथा अति लघुरूप धरौं निशि नगर करौं पइसार (रा.च.मा. ५-३)। भगवान् के अन्य द्वारपाल श्रीआञ्जनेय के समान नहीं देखे जाते। कहीं-कहीं तो स्वामी को सूचित किए बिना ही प्रतिहार अपनी उच्छृङ्खलता के कारण आगन्तुक को बहुत क्षुब्ध किया करते हैं। इस विषय की स्पष्टता के लिए भागवत के तृतीय स्कन्ध का जय-विजय-उपाख्यान द्रष्टव्य है। सनकादिक एक बार भगवान् मधुसूदन के दर्शनार्थ श्रीवैकुण्ठ धाम पधारे। छह द्वारों को सहजतया लाँघकर वे सप्तम द्वार को भी लाँघने की चेष्ट कर रहे थे कि उनका यह स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहार भगवान् के प्रिय द्वारपाल जय-विजय को नहीं भाया। सन्तों का व्यक्तित्व चमत्कार शून्य तथा नमस्कार प्रधान हुआ करता है। उनकी रहनी में संसार का दिखावा तथा आडम्बर नहीं होता। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार को यह आशा भी न थी कि उन जैसे विधि-निषेध से बहिर्भूत परम अन्तरङ्गतम भगवत्प्रेमी महात्माओं के साथ भी द्वारपाल से आदेश रूप निरर्थक सांसारिक औपचारिकता की अपेक्षा की जायेगी। जय-विजय ने उन पञ्चवर्षीय दिगम्बर मुनिकुमारों को बिना अनुमति के ही भगवन्मन्दिर में प्रवेश करते देख ईषत् क्रोधवशीभूत होकर परिहासपूर्वक अपने बेंतका प्रहारकर नीचे गिरा दिया। जय-विजय का यह स्वभाव भगवान् तथा भगवान् के भक्त दोनों के लिए प्रतिकूलथा। भागवतकार ने वेत्रेण चास्खलयताम् का प्रयोग किया है। स्खलन का अर्थ होता है गिरना। यथा –

तान् वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान् वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मतत्त्वान्।
वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ॥

– भा.पु. ३-१५-३०

इस उद्दण्डता की पराकाष्ठा से वीतराग महर्षियों का भी हृदयसागर क्रोध की लहर से कुछ क्षुब्ध सा हो गया। तथा वे बोल पड़े कि तुम सर्वान्तर्यामी परम कृपालु प्रभु भगवान् विष्णु के पार्षद होने के योग्य नहीं हो। आज भी तुम्हारा हृदय महत्त्वाकांक्षा की आग से जल रहा है। अतः इस अपराध का उचित दंड ही तुम्हारे लिए उपयुक्त है। तुम काम, क्रोध, लोभ इन तीनों से पीड़ित हो। इसलिए तीन पापिष्ठ लोकों में जाओ। अर्थात् प्रथम जन्म में क्रोध-प्रधान दैत्य बनो (हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष) द्वितीय जन्म में काम-प्रधान राक्षस बनो (रावण और कुम्भकर्ण) एवं तृतीय जन्म में लोभ-प्रधान दानवरूप मानवताहीन मानव (शिशुपाल एवं दन्तवक्र) बनो। यहाँ तीन जन्म पर्यन्त पापिष्ठ लोकों में जाने का भी साभिप्राय था। सनकादि महर्षियों ने जय-विजय को तीन जन्म के लिए इस कारण शाप दिया कि जब जय-विजय ने उन्हें ३-३ बेंत लगाये थे। यही त्रय इमे शब्द के प्रयोग का कारण प्रतीत होता है यथा –

तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टिमिह धीमहि मन्दधीभ्याम्।
लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र॥

– भा.पु. ३-१५-३४

गोस्वामीजी भी इस प्रसङ्ग की चर्चा मानसजी में बड़े ही रोचक ढंग से करते हैं –

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ॥
बिप्र शाप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥

– रा.च.मा. १-१२२-४,५

मुक्त न भये हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रमाना॥

– रा.च.मा. १-१२३-१

अर्थात् अन्य द्वारपाल अप्रत्याशित रूप में स्वामी के यहाँ जानेवालों को बेंत के प्रहार से निरस्त करते हैं, किन्तु श्रीहनुमान जी महाराज रावण के द्वारा कृतचरण-प्रहार से पीड़ित विभीषण को भी भगवान् के श्रीचरणारविन्दका शरणागत बना देते हैं। श्रीराघव की शरण में समागत विभीषण के प्रति जब सुग्रीव नाना प्रकार के आक्षेप प्रत्याक्षेप करने लगे, जब आञ्जनेय को बहुत दुःख हुआ, पर श्रीराघव ने मम पन शरणागतभय हारी (रा.च.मा. ५-४३-८) कहकर विभीषण को स्वीकारने का निश्चय किया। तब हनुमान जी अत्यन्त प्रसन्न हुए –

सुनि प्रभु वचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥

– रा.च.मा. ५-४३-९

इस प्रकार अन्य द्वारपाल की अपेक्षा आगन्तुक को प्रभु के चरणों में जोड़ने की श्रीहनुमान जी में विलक्षण क्षमता है।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

सब सुख लहहिं तुम्हारी शरना। तुम रक्षक काहू को डर ना॥ २२ ॥

शब्दार्थ – सरना - शरण में। लहहिं - प्राप्त करते हैं।

अर्थ – हे हनुमान जी महाराज। आपकी शरण में जाकर साधक जन समस्त सुख प्राप्त कर लेते हैं। आप रक्षक हैं, अतः अब किसी का डर नहीं है।

व्याख्या – जय-विजय की भाँति आप किसी आगन्तुक को भगवान् के दर्शन से वंचित नहीं करते, अपितु उनसे पूछे बिना भी अपनी कृपालुता से आप श्रीराघव का दर्शन करा देते हैं। अब हम निर्भीक हो गये हैं। यथा साहसी समर्थ तुलसी को नाथ जाकी बाँह लोकपाल पालिबे फिर थिर थल भो (ह.बा. ६)।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

आपन तेज सम्हारो आपै। तीनौं लोक हाँक ते काँपे॥ २३ ॥

शब्दार्थ – सम्हारो - स्मरण करें।

अर्थ – हे प्रभो जब आप अपने तेज को स्मरण कर लेते हैं तब आपकी हाँक से ही त्रैलोक्य कंपित हो उठता है।

व्याख्या – सम्हारो शब्द का अर्थ है स्मरण। यथा दीन दयाल बिरद संभारी (रा.च.मा. ५-२७-४)। क्योंकि ऋषियों के शाप से इन्हें अपना तेज विस्मृत रहता है। इसलिए जाम्बवान् को स्मरण दिलाना पड़ा। यथा –

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम पाहीं॥

– रा.च.मा. ४-३०-५

अतः आज भी भक्त लोग विरुदावली गाकर हनुमान जी के तेज का उद्बोधन करते हैं। इनकी हाँक का वर्णन कवितावली लंकाकाण्ड में इस प्रकार है –

मत्तभट मुकुट दशकंध साहस सइल सृङ्ग बिद्दरनि जनु बज्र टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ शेष संकुचित संकित पिनाकी।
चलित महि मेरु उच्छलित सागर सकल बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।
रजनिचर धरनिधर गर्भ अर्भक स्रवत सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥

– क. ६-४४

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

भूत पिशाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥ २४ ॥

शब्दार्थ – भूत पिशाच - अकाल मृत्यु को प्राप्त उग्र आत्मा अथवा निम्न देवयोनि।

अर्थ – जब भावुक भक्त महावीर नाम सुना-सुना कर कीर्तन करते हैं उस समय भूत पिशाच उनके नजदीक नहीं आते।

व्याख्या – अब महावीर नाम विशेष की महत्ता कहते हैं। यह भूत पिशाचों का त्रासक है। यथा पूतना पिशाची जातुधानी जातुधान वाम रामदूत की रजाइ माथे मान लेत हैं (ह.बा. ३२)।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥ २५ ॥

शब्दार्थ – निरन्तर - हमेशा, सदा।

अर्थ – सदैव भक्तों के द्वारा जप के विषय-भूत होने पर वीर हनुमान जी रोगों को नष्ट कर देते हैं एवं समस्त पीड़ाओं को हर लेते हैं।

व्याख्या – रोग यहां शारीरिक रोगों का वाचक है। पीड़ा शब्द का कामादि आध्यात्मिक पीड़ाओं से तात्पर्य है। भाव यह है कि गुरुदीक्षालब्ध श्रीहनुमन्मन्त्र का जप करने से साधक के शरीर के रोग तथा आध्यात्मिक ताप नष्ट हो जाते हैं।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

संकट तें हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै॥ २६ ॥

शब्दार्थ – संकट - विपत्ति।

अर्थ – जो मन, क्रम वचन से एकाग्र होकर हनुमान जी को ध्यान में ले आते हैं उन्हें श्रीहनुमान जी सभी संकटों से मुक्त कर देते हैं।

व्याख्या – उनका नाम ही संकट मोचन है। यथा को नही जानत है जग में कपि संकट मोचन नाम तिहारो (सं.ह.अ. १,२,३,४,५,६,७,८)। यथा गुन गनत नमत सुमिरत जपत समन सकल संकट विकट (ह.बा. १)।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

सब पर राम राय सिरताजा। तिन के काज सकल तुम साजा॥ २७ ॥

शब्दार्थ – सब पर - सर्वोपरि। सब पर शब्द सर्वपर का तद्भव है यहाँ सर्वत्र लवराम् - इस प्राकृत सूत्र से र का लोप हुआ।

अर्थ – अर्थात् श्रीराम परब्रह्म और राजाओं के मुकुटमणि हैं। उनके भी सम्पूर्ण कार्यों को आपने ही सम्पन्न किया।

व्याख्या – श्रीराम जी सर्वोपरि हैं। यथा –

शंभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते नाना॥

– रा.च.मा. १-१४४-६

अर्थात् श्रीराम राजाधिराज हैं फिर भी उनके सम्पूर्ण कार्यों को आपने ही सम्पन्न किया। भाव यह है कि सर्वोपरि परब्रह्म राजाधिराज भगवान् श्रीराम को भी जिनकी निरन्तर अपेक्षा रहती है, तो हम जैसे जीवों की उनके बिना कैसी स्थिति होगी। यथा - संकट समाज असमंजस भो रामराज काज जुग पुगनि को करतल पल भो (ह.बा. ६)।

प्रचलित प्रति में सब पर राम तपस्वी राजा पाठ है। इसका "श्रीराम परब्रह्म एवं तपस्वी राजा हैं" ऐसा अर्थ होगा।[१]

[१] गुरुदेव द्वारा सम्पादित श्रीहनुमानचालीसा के प्रामाणिक संस्करण में सब पर राम राय सिरताजा पाठ है – जालस्थल सम्पादक।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

और मनोरथ जो कोई लावै। तासु अमित जीवन फल पावै॥ २८ ॥

शब्दार्थ – मनोरथ - अभिलाषा। अमित - असीम।

अर्थ – हे प्रभो। और जो आपके समक्ष कोई भी मनोरथ लेकर आता है, उस मनोरथ का अपने इसी जीवन में असीम फल पाता है।

व्याख्या – सोइ अमित जीवन फल पावै यह पाठ मानने पर "वह व्यक्ति इसी जीवन में उस इच्छा का असीम फल पा लेता है" अर्थ होगा।[१] भाव यह है कि मानव की इच्छायें प्रायः पूर्ण नहीं होतीं, यदि होती भी हैं तो शरीरान्त के पश्चात्। परन्तु हनुमान जी के समक्ष इसी जीवन में समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यथा नाम कलि काम तरु केशरी कुमार को (ह.बा. ९)।

[१] गुरुदेव द्वारा सम्पादित श्रीहनुमानचालीसा के प्रामाणिक संस्करण में तासु अमित जीवन फल पावै पाठ है – जालस्थल सम्पादक।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा॥ २९ ॥

शब्दार्थ – उजियारा - उजेला।

अर्थ – हे प्रभो। आपका प्रताप कृतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग इन चारों युगों में प्रसिद्ध है। इससे जगत में उजेला छाया हुआ है।

व्याख्या – श्रीराम सार्वकालिक हैं। अतः प्राकट्य के पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरके कृतयुग में मनु शतरूपा को द्विभुज रूप में ही दर्शन दिया। यथा –

भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिशि सीता सोई॥

– रा.च.मा. १-१४८-४

उसी प्रकार उनका नाम भी चारों युगों में प्रसिद्ध है। यथा चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ (रा.च.मा.१-२२-८)। अतः कृतयुग में प्रह्लाद भी रामनाम जपते थे। यथा राम कहाँ सब ठौर है खम्भ में हाँ सुनि हाँक नृकेहरि जागे (क. ७-१२८)। प्रह्लाद दैत्य बालकों से स्वयं कहते हैं कि –

रामनामजपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

–

तद्वत् श्रीराम जी के परिकर श्रीहनुमान जी भी चारों युगों में रहते हैं। वैवस्वत मन्वन्तरके २४वें त्रेता के अन्त में प्रभु का प्राकट्य हुआ। पश्चात् आञ्जनेय को तब तक के लिए अमरत्व प्रदान किया जब तक श्रीराम कथा का प्रवाह धराधाम पर अक्षुण्ण रहे। यथा –

चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका।
तावत्ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा॥

– वा.रा. ७-४०-२०

भगवान् ने कहा जब तक मेरी कथा इहलोक में रहेगी तब तक तुम्हारी यह कीर्ति एवं तुम्हारे शरीर के प्राण रहेंगे। अतः उस समय से अद्यावधि श्रीराम-कथा के साथ आञ्जनेय का स्वास्थ्य रहना सुस्पष्ट है। यह २८वाँ कलियुग है। प्रभु के प्राकट्य से आज तक चार चतुर्युगियाँ बीत ही गयीं। अतः हनुमान जीके अमरत्व में किमपि सन्देह नहीं है।

प्रताप की उपमा सूर्य से दी जाती है। यथा प्रभु प्रताप रवि छबिहिं न हरही (रा.च.मा. २-२०९-३)। इसलिए इससे जगतमें उजाला कहना उचित है।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे॥ ३० ॥

शब्दार्थ – असुर निकंदन - राक्षसों को मारने वाले।

अर्थ – हे राक्षसों को नष्ट करने वाले श्रीरामजी के दुलारे श्रीहनुमानजी महाराज आप साधु तथा संतों के रक्षक हैं।

व्याख्या – यहाँ साधु शब्द साधनारत भक्तों की ओर संकेत करता है एवं संत शब्द साधन संपन्न भक्त को सूचित करता है। दोनों को हनुमान जी की अपेक्षा है। साधु सुग्रीव तथा संत विभीषण दोनों हनुमान जी से रक्षित हैं। यथा दुर्जन को काल सो कराल पाल सज्जन को (ह.बा. १०)।

हनुमान जी राघव जी के दुलारे हैं। यथा राम को दुलारो दास (ह.बा. ९)।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता। अस बर दीन्ह जानकी माता॥ ३१ ॥

शब्दार्थ – दाता - देने वाले।

अर्थ – आप अष्ट सिद्धियों एवं नव निधियों के देने वाले हैं। जनक नन्दिनी श्रीसीता माता ने आपको ऐसा वरदान दिया है।

व्याख्या – अशोकवाटिका में जब श्री आञ्जनेय के वाक्यचातुर्य से माँ मैथिली भलीभाँति संतुष्ट हो गयीं तब इन्होंने आञ्जनेय को आशीर्वाद पुष्पों से विभूषित कर दिया। यहाँ माया की सीता अविद्या अथवा विद्या रूप में नहीं हैं अपितु श्रीराघवकी लीला शक्ति ही माया सीता के रूप में वर्तमान हैं अन्यथा माया के मिथ्यात्व से आञ्जनेय को दिए हुए आशीर्वाद भी प्रामाणिक न हो पायेंगे। इस प्रसङ्ग का सङ्केत भावी किसी ग्रन्थ में किया जाएगा। अथ प्रकृतमनुसरामः। यथा –

आशिष दीन्ह राम प्रिय जाना। होहु तात बल शील निधाना॥
अजर अमर गुन निधि सुत होहू। करहु बहुत रघुनायक छोहू॥
करिहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

– रा.च.मा. ५-१७-२,३,४

सिद्धियाँ आठ हैं –

अणिमा गरिमा चैव महिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः॥

– अ.को. १-१

अर्थात् अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व आदि। निधियाँ नौ हैं - महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व आदि। यथा

महापद्मञ्च, पद्मञ्च शङ्खो मकरकच्छपौ।
मुकुन्दः कुन्दनीलौ च खर्वश्च निधयो नव॥

– अ.को. १-११

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

राम रसायन तुम्हरे पासा। सादर हो रघुपति के दासा॥ ३२ ॥

शब्दार्थ – राम रसायन - श्रीराम रसका भाण्डागार (भण्डार)।

अर्थ – हे पवन नन्दन। राम प्रेमरस का भण्डार आपके ही पास है एवं आप निरन्तर आदरपूर्वक रघुपति श्रीरामभद्रजू के दास्य भाव में रहते हैं। यद्वा हे आदरणीय रघुपति श्रीरामभद्रजू के दास हनुमान जी आपके पास रामप्रेमरस का भवन अर्थात् राघवचरित्र निरन्तर निवास करता है।[१]

व्याख्या – श्रीहनुमानजी रामभक्ति रस के आचार्य ही हैं। अत एव इन्होंने श्री राघव से अनपायनी भक्ति माँगी –

नाथ भगति तव अति सुखदायिनि। देहु कृपा करि सो अनपायनि॥

– रा.च.मा. ५-३४-३

इन्हें गोस्वामीजी ने रसायनी शब्द से सम्बोधित किया है। यथा राम के रजाइतें रसाइनी समीर सुनु (क. ५-२५)।

[१] बहुप्रचलित प्रति में सदा रहो पाठ मिलता है। गुरुदेव द्वारा सम्पादित श्रीहनुमानचालीसा के प्रामाणिक संस्करण में सादर हो पाठ है – जालस्थल सम्पादक।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

तुम्हरे भजन राम को पावै। जनम जनम के दुख बिसरावै॥ ३३ ॥

शब्दार्थ – भजन - सेवा, शरणागति।

अर्थ – हे कपि-कुल-तिलक। आप के भजन से साधक श्रीरामभद्रजू को पा जाता है और प्रभु को पाकर वह अनेक जन्मों के दुखों को भूल जाता है।

व्याख्या – आपका भजन भगवत्प्राप्तिमें साधन है क्योंकि भगवद्भक्ति दर्शन के लिए ज्ञान-वैराग्य इन दो नेत्रों की आवश्यकता होती है। यथा ज्ञान बिराग नयन उरगारी (रा.च.मा. ७-१२०-१४)। और आप स्वयं ज्ञान वैराग्य रूप हैं। यथा ज्ञानिनामग्रगण्यम् (रा.च.मा. सु.का. मं.श्लो. ३), बिरागी पवनकुमार सो (क. ५-१)। अतः आञ्जनेय के भजन से निश्चित श्रीरामरूप की प्राप्ति हो जाती है। राघव सुख-सिन्धु हैं अतः उन्हें प्राप्त कर व्यक्ति अनेक जन्मों के दुखों को उन्हीं आनन्द-सिन्धु की एक लहर में विलीन कर देता है जैसे जटायु निरखि राम छबिधाम मुख बिगत भई सब पीर (रा.च.मा. ३-३०)।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

अंत काल रघुबर पुर जाई। जहाँ जन्म हरिभक्त कहाई॥ ३४ ॥

शब्दार्थ – रघुबर पुर - श्रीसाकेतलोक।

अर्थ – हे राम-दूत। आपके भजन के प्रताप से वह साधक इसी भौतिक शरीर से भगवान् श्रीरामभद्र का दर्शन करके शरीरावसान (अन्तकाल) के समय श्रीसाकेत लोक जाकर पुनः मर्त्यलोक में जहाँ भी जन्म लेता है वहाँ श्रीहरि का भक्त ही कहलाता है। अर्थात् पुनर्जन्म में भी उसके भक्ति के संस्कार धूमिल नहीं होते।

व्याख्या – इसी शरीर से साधक इसी लोक में इन्हीं चक्षुओं से श्रीरामजू के कोटि-कोटि कन्दर्प दर्प दलन सगुण साकार नीलनीरधरश्याम लोकाभिराम श्रीविग्रह का दर्शन करता है और अन्तकाल में वह मोक्ष नहीं चाहता। क्योंकि – सगुनोपासक मोक्ष न लेहीं (रा.च.मा. ६-११२-७)। फिर प्रारब्ध का क्षय करके शरीर को विसर्जित कर अपनी इच्छानुसार श्रीसाकेत लोक में विश्राम कर पुनः भगवल्लीलारस की अनुभूति की लालसा से भगवान् श्रीराघव के अवतार काल में संसार में आकर किसी भाग्यशालिनी माँ की कोख को पवित्र कर रघुनाथ जी की प्रतीक्षा में निरत रहता है। यथा –

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोक्ष सुख त्यागि॥

– रा.च.मा. ४-२६

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्व सुख करई॥ ३५ ॥

शब्दार्थ – सर्वसुख- लौकिक एवं पारलौकिक अनुकूलता।

अर्थ – जो भक्त किसी अन्य देवता को अपने चित्त में न धारण कर केवल हनुमान जी की सेवा करता है वह समस्त सुखों को प्राप्त कर लेता है। यद्वा जो अन्य किसी देवता को अपने चित्त में नहीं धारण करता वह भी हनुमान जी की सेवा करके समस्त सुखों की प्राप्ति कर लेता है।

व्याख्या – देवता विमुख को नास्तिक कहा जाता है तथा उसे सुख की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि इष्ट भोगों को देने वाले देवता ही हैं। यथा इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः (भ.गी. ३-१२)। पर वह भी हनुमत्कृपा से सर्वसुख का अधिकारी हो सकता है क्योंकि समस्त देव उन्हीं की कृपा की अपेक्षा रखते हैं। यथा देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ बापुरे बराक कहा और राजा राँकको (ह.बा. १२)। अथवा अनन्य निष्ठासे से सेवा करने पर हनुमान जी समस्त सुख प्रदान करते हैं।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा॥ ३६ ॥

शब्दार्थ – बलवीरा - बल से युक्त वीर।

अर्थ – जो अतुलनीय बलयुक्त वीर श्रीहनुमान जी महाराज का स्मरण करता है उसके समस्त संकट कट जाते हैं तथा सभी पीड़ायें मिट जाती हैं।

व्याख्या – हनुमान जी के स्मरण से श्रीशिव- पार्वती एवं श्रीसीता-राम-लक्ष्मण प्रसन्न होकर साधक के पंचक्लेश को हर लेते हैं। यथा –

सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि लोकपाल सकल लखन राम जानकी।
लोक परलोक को बिसोक सो तिलोक ताहि तुलसी तमाहि ताहि काहू बीर आन की।
केशरी किशोर बंदीछोर के नेवाजे सब कीरति बिमल कपि करुनानिधान की।
बालक ज्यों पालिहैं कृपालु मुनि सिद्ध ताको जाके हिये हुलसति हाँक हनुमान की॥

– ह.बा. १३

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

जय जय जय हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरुदेव की नाईं॥ ३७ ॥

शब्दार्थ – गोसाईं - इन्द्रियों के स्वामी।

अर्थ – हे गोसाईं हनुमान जी महाराज आपकी जय हो, जय हो, जय हो।आप गुरुदेव की भाँति वात्सल्य पूर्ण कृपा करें।

व्याख्या – हनुमानजी सच्चिदानन्द हैं इसलिए गोस्वामीजी तीन बार जय शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रथम जय से हनुमानचालीसा ग्रन्थ का उपक्रम किया था। पुनः जय से उपसंहार करके उनसे कृपा की याञ्चा कर रहे हैं अर्थात् कठोर कृपा न करें। जीव पर दो ही कृपा कर सकते हैं गुरु एवं गोविन्द। गोविन्द की कृपा में कठोरता के साथ कोमलता होती है जैसे असुरों के निग्रह में। किन्तु गुरुकृपा निरन्तर कोमलता से ओत-प्रोत रहती है। यथा –

एक शूल मोहि बिसर न काऊ। गुरु कर कोमल शील सुभाऊ॥

– रा.च.मा. ७-११०-२

अतः प्रभो। गुरुदेव की भाँति कृपा करके आप मुझे श्रीराम प्रेम का ज्ञान करायें।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

जो सत बार पाठ कर कोई। छूटहि बंदि महा सुख होई॥ ३८ ॥

शब्दार्थ – बंदि - लौकिक तथा पारलौकिक बंधन।

अर्थ – यदि कोई इसका १०० बार पाठ श्रद्धा एवं भक्ति से करेगा उसके लौकिक एवं पारलौकिक बंधन छूट जायेंगे एवं उसे महासुख की प्राप्ति होगी।

व्याख्या – यहाँ सत शब्द १०८ का बोधक है तथा बार शब्द दिन एवं संख्या वाचक है। कोई शब्द सर्वसाधारण के लिए अधिकार समर्पक हैं अर्थात् कोई भी मनुष्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, इतर धर्मी कोई भी) यदि हनुमान चालीसा को १०८ बार प्रतिदिन के क्रम से १०८ दिन तक पाठ करें तो निश्चित उसका अनिष्ट बन्धन छूट जायेगा। यह हनुमान चालीसा गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने समस्त प्राणिमात्र को तुलसीदल प्रसाद रूप में वितरित किया है यह फलश्रुति है।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा॥ ३९ ॥

शब्दार्थ – गौरीसा - भगवान् शिव।

अर्थ – अब गोस्वामी जी भविष्यत्काल में वर्तमान काल का दर्शन कर बोल रहे हैं जो इस हनुमानचालीसा को पढ़ेगा उसको अवश्य लौकिक तथा पारलौकिक सिद्धि प्राप्त होगी। इस विषय प्रतिज्ञा के साक्षी भगवान् शिव है।

व्याख्या – श्रीहनुमान-चालीसा लौकिक तथा पारलौकिक सिद्धियों की प्रदाता है इस प्रतिज्ञा में शिवजी का साक्ष्य देते हैं। जैसे विनयपत्रिका में श्रीराम-नाम प्रतीत करते समय शिवजी को साक्षी रूप में उपस्थित किया है। यथा शंकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो (वि.प. २२६-६)।

॥ श्रीराम ॥

मूल (चौपाई) –

तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय महँ डेरा॥ ४० ॥

शब्दार्थ – हरि चेरा - श्रीराम जी के सेवक।

अर्थ – हे कीशनाथ श्रीहनुमान जी महाराज। आप निरन्तर भगवान् श्रीराम के कैंकर्य में निरत रहते हैं अतः उसी कृपालुतावश तुलसीदास के हृदय में निवास कीजिए। यद्वा गोस्वामी जी कहते हैं कि आञ्जनेय, आप निरन्तर भगवद्भक्त के हृदय में निवास कीजिए। अथवा मैं तुलसीदास निरन्तर हरि अर्थात् वानरश्रेष्ठ आपश्री का सदैव दास हूँ, हे नाथ आप मेरे हृदय में श्रीराम-लक्ष्मण-सीता सहित निवास कीजिए।

व्याख्या – अन्त में गोस्वामी जी अपने हृदय में निवास करने के लिए किंवा वैष्णवजनों के लिए हनुमान जी से प्रार्थना करते हैं। हरि चेरा शब्द का नाथ, हृदय तथा तुलसीदास शब्द से अन्वय करने पर उपर्युक्त तीनों अर्थ संगत हो जाते हैं अर्थात् नाथ सदा हरि चेरा तुलसीदास हृदय महँ डेरा कीजै इस अन्वय से प्रथम अर्थ तथा तुलसीदास नाथ हरि चेरा हृदय महँ सदा डेरा कीजै इस अन्वयसे द्वितीय अर्थ की पुष्टि हो जाती है। यहाँ[१] तुलसीदास शब्द के साथ कहत इस बाहरी क्रिया को जोड़ना पड़ता है जैसे अन्यत्र। यथा शरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल (रा.च.मा. २-२२६)।[२]

[१] दूसरे अर्थ में – जालस्थल सम्पादक।

[२] तुलसीदास सदा हरि चेरा नाथ हृदय महँ डेरा कीजै इस अन्वयसे तृतीय अर्थ की पुष्टि होती है – जालस्थल सम्पादक।

॥ श्रीराम ॥

मूल (दोहा) –

पवनतनय संकट हरन मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित हृदय बसहु सुर भूप॥

शब्दार्थ – पवन तनय - पवन के पुत्र। सुर भूप - देवताओं के राजा।

अर्थ – हे पवन के पुत्र, समस्त संकटों को हरनेवाले मङ्गल मूर्तिरूप समस्त देवताओं के अधिष्ठान स्वरूप श्रीहनुमान जी महाराज। आप श्रीराम, श्रीलक्ष्मण एवं माँ मैथिली के साथ हमारे हृदय में निवास करें।

व्याख्या – चार विशेषण देकर श्रीहनुमान जी को ही मन बुद्धि अहंकार एवं चित्त को शुद्ध करने में सहायक सिद्ध करते हैं एवं पश्चात् राम लक्ष्मण एवं सीताजी के सहित हृदय में विश्राम करने की प्रार्थना करके सर्वतोभावेन श्रीमन्मारुति के ही श्रीचरणकमलकी शरणागतिको ही परम पुरुषार्थ बताकर ग्रन्थ को विश्राम दे रहे हैं।

सुमिरि राम सिय चरन कमल गुरु पद रज शिर धरि।
चौद्वार उत्कल थल मारुतसुतहि ध्यान करि।
संवत नभ फल ख दृग सुमाधव शिव शनिवारा।
शुक्ल दूज हनुमान चालीसा मति अनुसारा।
जुगुति शास्त्र सिद्धान्तमय वैष्णव रीति भगति भरी।
नाम महावीरी ललित लघु व्याख्या गिरिधर करी॥

॥ श्रीहनुमते नमः ॥

अ.को. – अमरकोष

अ.मा.स्तो. – अतिमानुषस्तव/अतिमानसस्तोत्र (श्रीवत्साङ्कमिश्रकृत)

अ.शा. – अभिज्ञानशाकुन्तल

क. – कवितावली

गी. – गीतावली

त.सं. – तर्कसङ्ग्रह (अण्णंभट्टकृत)

तै.उ. – तैत्तिरीयोपनिषद्

दो. – दोहावली

धा.पा. – धातुपाठ (पाणिनिकृत)

भ.गी. – भगवद्गीता

भा.पा.सू. – भाष्य (पतञ्जलिकृत) में पाणिनीयसूत्र

भा.पु. – भागवतपुराण

म.भा. – महाभारत

मा.सु.सं. – महासुभाषितसङ्ग्रह

मु.उ. – मुण्डकोपनिषद्

यो.सू. – योगसूत्र

र.वं. – रघुवंश

रा.च.मा. – श्रीरामचरितमानस

रा.प्र. – रामाज्ञा प्रश्न

रा.र.स्तो. – रामरक्षास्तोत्र (बुधकौशिककृत)

वा.रा. – वाल्मीकीय रामायण

वि.प. – विनयपत्रिका

वि.पु. – विष्णुपुराण

वै.स. – वैराग्य संदीपनी

सं.ह.अ. – संकटमोचन हनुमान अष्टक

ह.चा. – श्रीहनुमानचालीसा

ह.बा. – हनुमान बाहुक